

3.5

(गीता प्रवचन)

गीता प्रेमवार्तालाप

*

विनोबा भावे

(गीता प्रवचन)

गीता प्रेमवार्तालाप

★

[श्री शिवाजी न० भावे द्वारा गीतायज्ञ आयोजन के अवसर पर दिया गया प्रवचन]

★

कमलेश्वरी सर्वोदय संस्थान

लालबाग, दरभंगा।

विजयादशमी

संवत् २०२२

मूल्य १.५० पैसे मात्र।

प्रथम संस्करण १०००

प्रकाशक :
कमलेश्वरी सर्वोदय संस्थान,
लालबाग, दरभंगा (बिहार) ।

मूल्य : १.५० पै० ।

प्रकाशन तिथि :
विजयादशमी, सं० २०२२ ।

मुद्रक :
श्री ताराकान्त झा,
भारती प्रेस, मिर्जापुर, दरभंगा।

दो शब्द

कमलेश्वरी सर्वोदय संस्थानकी ओरसे लगातार तीन वर्षोंसे दरभंगा आनेका आमंत्रण मिलता रहा। लेकिन अिस वख्त भगवत्-कृपासे दरभंगामें सर्वोदय गीता-यज्ञमें आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

गीता पर पू० विनोबाजीके प्रवचन सबको हमेशाके लिअे मार्गदर्शन करते आये हैं। हमारे सामने भी वे ही हमेशा मार्गदर्शक रहे हैं। तो प्रिय-दर्शन डॉ० ललितेश्वरीचरण सिन्हाने जब हमको सर्वोदय-गीता-यज्ञके अवसर पर समूची गीताके बारेमें प्रवचन करनेके लिअे आमंत्रित किया तब हमें संकोच मालूम नहीं हुआ। सात दिनमें संपूर्ण गीता पर बोलना यह पू० विनोबाजीके प्रवचनके आधारके बगैर अशक्य ही था।

लेकिन पू० विनोबाजीके प्रवचन और हमारे सात दिनके प्रवचनोंमें बहुत फर्क है। ये प्रवचन बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री, पुरुष—सबको ध्यानमें रखकर दिये गये हैं। अिसलिअे अिनमें कोई व्यवस्थित रीतिकी कल्पना नहीं है। अिसमें पुनरुक्ति, व्याजोक्ति, अतिशयोक्ति, हास्योक्ति—सब क्षम्य समझकर यह अेक गीता–प्रेम–वार्तालाप अुपस्थित किया गया है।

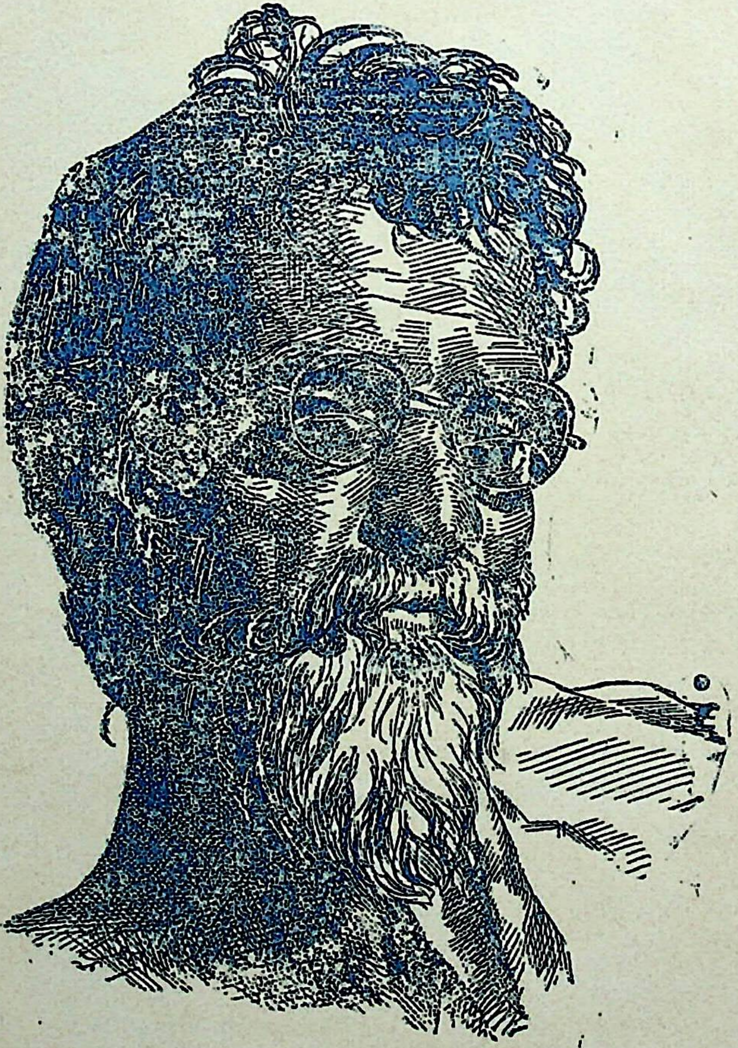
अिस प्रेम–वार्तालापका प्रमुख श्रेय प्रियदर्शन ललितेश्वरीचरण सिन्हा और चि० गीता* को है। अिसलिअे हमें बड़ा संतोष है। अिसकी असंबद्धता और प्रमाणरहितता यही अिसका मधुर गुण समझकर यह सेवा हम जनता-जनार्दनको समर्पित करते हैं।

दरभंगा,
दिनांक २६-६-१९६३

—शिवाजी न० भावे

---

* चि० गीताका अुल्लेख सुश्री गीता बहनके निमित्त है। पूज्य श्री भावेजीका पूरा प्रवचन गीताबहन प्रतिदिन शाममें लिखा करती थी और अुसीदिन टाइप कर लिया करती थी।



श्री विनोबा भावे

समर्पणम्

श्रीयाज्ञवल्क्यजनकाऽऽदिमुकीर्तिकुञ्जे
शिक्षासुधाधवलिते मिथिलानिकुञ्जे ।
'गीता' सुशास्त्रमवलम्ब्य सता 'शिवाजी-
भावे'-बुधेन निज भाषणमत्र दत्तम् ॥

तद्भाषणाऽभिनवतत्त्वसुसंग्रहोऽयं-
ज्ञानोपलिप्सुजनताहृदयप्रदीपः ।
गीताऽर्थचिन्तनपराय सते 'विनोबा-
भावे'ऽभिधाय विबुधाय समर्प्यतेऽद्य ॥

देशाऽन्धकारदमनायकृतप्रयत्नो
लोकस्य दुःखशमनाय गृहीत दीक्षः ।
'भूदान' यज्ञ परिचालक लोकबन्धुः
'भावे !' भवान् विजयतां जनताहिताय ॥

सर्वोदय प्रकाशेन येन देशः प्रकाशितः ।
श्री'विनोबा'महात्माऽयं विजयं लभतां सदा ॥

विजयादशमी,
१८८७ शकाब्दे ।

इति समर्पयन्ति सदस्याः
कमलेश्वरीचरण सर्वोदय संस्थानस्य
दरभंगा (मिथिला) स्थस्य ।

आत्म-निवेदन

गीता-यज्ञ की कल्पना वहुत दिनों से चल रही थी, लेकिन उसका रूप क्या होगा यह तय नहीं हो पाया था। इसी वीच पूज्य शिवाजी भावे का विहार में आगमन हुआ और श्रीकृष्णराज मेहता, अध्यक्ष, 'कमलेश्वरी सर्वोदय संस्थान' के सत्प्रयास से उनका दरभंगा के लिए कार्यक्रम वना। पूज्य भावे जी १० सितम्वर १९६३ को दरभंगा पधारे और उसके वाद २५ सितम्वर तक राज दरभंगा के अतिथि-निवास में रहे। सात दिनों तक गीता-यज्ञ चला जिसमें प्रातःकाल सम्पूर्ण गीता का पाठ होता था और उसके वाद प्रत्येक श्लोक का उच्चारण करते हुए विष्णुमंत्र के साथ आहूति दी जाती थी। शायद इस देश में यह पहला प्रयास था। अपराह्न में रामचरित मानस का नवाह पाठ चलता था। संध्या समय पूज्य भावे जी का प्रवचन होता था इसक्रम से सात दिनों में सम्पूर्ण गीता पर प्रवचन किया। निर्धारित कार्यक्रमानुसार पूज्य भावे जी के साथ दस-बारह जिज्ञासुओं का परिवार था जिसमें कुछ वहनें भी थीं और सभी लोगों का इतने दिनों तक यहाँ रहना वहुत ही उत्साहवर्द्धक रहा और जनता में वहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। प्रवचन के समय जिस अपार शान्ति का अनुभव श्रोतागण करते थे वह अकथनीय है। पूज्य भावेजी ने एक दिन स्वयं यज्ञभूमि में सम्पूर्ण गीता का पाठ किया और अन्तिम दिन १८ वें अध्याय के प्रत्येक श्लोक का उच्चारण करते हुए विष्णुमंत्र के साथ आहुति दिया। इन दोनो दिनों में जिस आनन्द का अनुभव हुआ वह अवर्णनीय है।

सम्पूर्ण प्रवचन को पुस्तकाकार प्रकाशित करने की योजना के कार्यान्वियन में सर्वश्री आचार्य धर्मप्रियलाल, हिन्दी विभागाध्यक्ष च० मि० महाविद्यालय, श्री गंगाधर मिश्र, व्याकरणाचार्य, बी० ओ० एल० और श्री ताराकान्त झा, प्रबन्ध सम्पादक 'विदेह' का योगदान रहा है। उनके प्रति हम कृतज्ञता ज्ञापन कर रहे हैं। साथ ही निवेदन है कि पुस्तक के प्रकाशन में कुछ विलम्ब हुआ है जो सकारण है।

हमारा विश्वास है कि गीता की चर्चा-अर्चा से आधुनिक आधि-भौतिक–वात्या से व्यग्र मानव को शान्ति मिलती है,

"गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैश्शास्त्रसंग्रहैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिस्सृता ॥"

अन्त में प्रकाशन विषयक त्रुटि के विषय में मेरा नम्र निवेदन है—

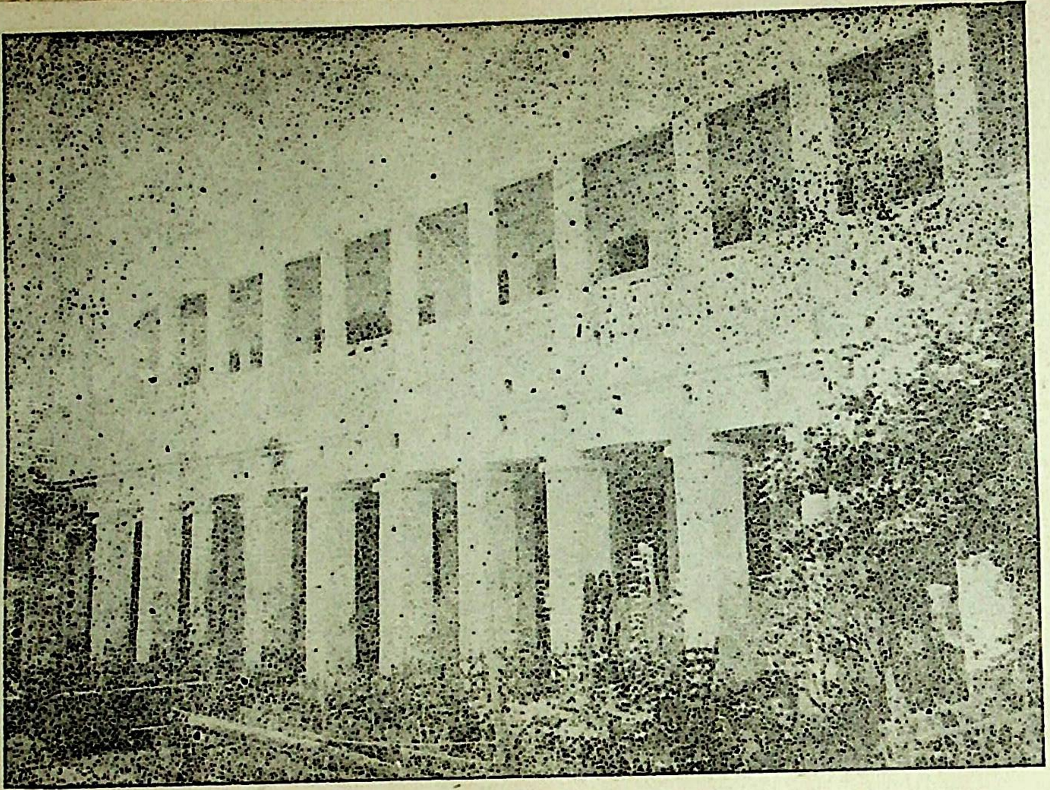
"गच्छतस्स्खलनं क्वाऽपि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥"

अलं पल्लवितेन।

विजयादशमी,
१८८७ शकाब्द।

अभ्यर्थी—
ललितेश्वरीचरण सिन्हा

अनुक्रमणिका



कमलेश्वरी सर्वोदय संस्थान का भवन

अध्याय १

सर्वोदय गीता-यज्ञ के समय पर दिया गया महर्षि शिवाजी भावे का प्रवचन—दिनांक १९–९–६३ स्थान—दरभंगा।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतस्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥

परमात्मप्राप्ति के दो साधन

भारतीय जीवन का ध्येय परमात्मप्राप्ति और परमात्मसेवा यही रहा है। इसके लिए हमारे देश में दो प्रकार के साधन उपलब्ध हैं। एक तो है भगवान् के लीलाचरित्र का अवगाहन करना और दूसरा है भगवान ने जो उपदेश दिया है उसका चिन्तन-मनन करना। इसी दृष्टि से भागवत में प्रह्लाद ने नवविधा भक्ति का उल्लेख किया है।

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्॥

यह नवविधा भक्ति का श्लोक बहुत ही प्रसिद्ध है, प्रख्यात है। श्रवण, कार्त्तन और स्मरण भक्ति का प्राथमिक स्वरूप है। उत्तरोत्तर भक्ति के प्राथमिक स्वरूप का विकास होता जाता है और भगवान के दर्शन के

लिए उसकी आवश्यकता भी है। श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण यह तीन इस दृष्टि से महत्व के हैं कि इनसे हमें साधन मिलता है। भगवान की लीला का श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण हो। वैसे उपदेश का भी हो यह आवश्यक है।

ग्रंथ दो प्रकार के लीलापर और उपदेशपर

यह सोचना चाहिए कि भगवान की लीला में भी उपदेश आते हैं। ऊपर-ऊपर से चाहे वह लीला दिखाई दे लेकिन अन्दर से देखेंगे, अन्तरतर में जायेंगे तो उपदेश दिखाई देगा। वैसे उपदेश में भी लीला होती है। लेकिन प्रधान और गौण का विवेक हमेशा रहता ही है, वैसे भागवत लीलाप्रधान और गीता उपदेशप्रधान है। मतलब यह नहीं कि भागवत में उपदेश है ही नहीं। भागवत में उद्धवगीता प्रख्यात ही है। यह तो एक मिसाल है।

गीता में भगवत-लीला के दो उदाहरण

मिसाल के तौर पर उपदेश में लीला कैसे रहती है—वह कहता हूँ। गीता में— विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गविहस्तिनि।

शुनिचैव स्वपाकेच पंडिताः समदर्शिनः ॥

ऐसा कहा है। पंडित लोग समदर्शी होते हैं। पंडिताः – पंडा— 'आत्मविषया बुद्धिः येषांते' ऐसा शंकराचार्य जी ने कहा है। पंडित लोग समदर्शी होते हैं। पंडित माने ज्ञानी। भगवान ने इस श्लोक में लीला-चरित्र का दर्शन करवाया है। भगवान गोकुल–मथुरा के पास रहते थे,

वहाँ विद्या–विनय–सम्पन्न ब्राह्मण लोग देखने में आते थे। इसीलिये भगवान ने कहा है—'विद्या-विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे। वे गाय भी चराते थे तो गवि कहा है। भगवान कंस को मारने के लिए गये थे। कंस ने उन पर हाथी छोड़ा था। राज्य-भूषण के तौर पर हाथी तो रखे ही जाते हैं, इधर उधर हाथी दिखने में आते थे तो हस्तिनि कहा। शुनि और श्वपाक भी थे ही तो उनका भी नाम लिया। गोकुल–वृन्दावन का जो दृश्य भगवान के सामने आया था, वह उन्होंने सहज ही सामने रखा है। विद्या-विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनिचैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥ पंडित को जो जो दर्शन होता है, उसमें वे सम-दर्शी होते हैं। इस तरह उपदेश के श्लोकों में भी भगवान का लीला-चरित्र आता है। बीच-बीच में वे ऐसा रख देते हैं। मुख्य बात तो उपदेश की ही है। दूसरी मिसाल ग्यारहवें अध्याय की है। अर्जुन भगवान को कहता है—हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति ऐसे नामों से मैंने तुमको पुकारा है और आगे कहता है—

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु।

इसमें भगवान और अर्जुन की सख्य भक्ति की लीला का दर्शन है। वह ग्यारहवें अध्याय में अर्जुन करवाता है और भगवान से क्षमा माँगता है—हे कृष्ण हे यादव हे सखेति, बाद में कहता है—एकोथवाप्यच्युत तत्समक्षं विहारशय्यासनभोजनेषु। अकेले में या सबके सामने विहार में या शय्या में मैंने जो कुछ भी आपको कहा है इसके लिए मुझको क्षमा करें।

यह सब लीला चरित्र का प्रसंग है। भगवद्गीता में लीला थोड़ी आयगी और उपदेश ज्यादा आयेंगे। भगवान की जैसी इच्छा होगी और प्रवाह में जैसा आयेगा वैसा कहने की हमसे कोशिश हो रही है।

गीता छंद

भगवद्गीता को देखकर कई लोगों को शंका आती है। भगवान ने अर्जुन को पद्य में कहा होगा कि गद्य में, ऐसा कई लोग पूछते हैं। तो कई लोग कहते हैं—ठीक है, भगवान ने पद्य में कहा होगा, लेकिन क्या अर्जुन ने भी पद्य में ही कहा होगा ? कई लोग पूछते हैं—भगवान ने उपदेश दिया इसका छन्द कौन सा था ? उसका जवाब यही है कि भगवान गद्य और पद्य से परे की भाषा में बोलते थे और वह छन्द था मुक्ति का छन्द। हमारी मराठी भाषा में एक ऐसा छन्द है, उसको मुक्त छन्द कहते हैं। यहाँ वैसा मुक्त छन्द है कि नहीं हमें मालूम नहीं, लेकिन मराठी में मुक्त छन्द है। अब वह मुक्त छन्द मुक्ति देनेवाला है या स्वैर है यह तो वे ही जाने। भगवान ने जो उपदेश दिया यह मुक्ति के स्वर में था ऐसा कह सकते हैं।

अर्जुन की भाषा जिज्ञासा की भाषा थी। यह गद्य थी या पद्य यह वाह्य सवाल है। उसकी भाषा आन्तरिक जिज्ञासा की थी। वह आन्तरिक जिज्ञासा जिसको होती है वही समझ सकता है। तीव्र जिज्ञासा, आत्मवोध की जिज्ञासा यह सामान्य वात नहीं है। अर्जुन को वैसी जिज्ञासा हुई थी और उसने प्रश्न रखे थे। यह सामान्य वात नहीं। भगवान ने उस प्रश्न के उत्तर दिये।

लेकिन गीता की रचना व्यास भगवान ने की है और वह किस छन्द में की है, ऐसा सवाल आता है तो उसका जवाव यह है कि आदि कवि के छन्द में ही भगवान व्यास ने गीता की रचना की। वीच वीच में दूसरा छन्द भी आता है, लेकिन यह आदि कवि का छन्द मुख्य है। आदि कवि

वाल्मीकी रोज सुबह-सुबह घूमने जाते थे तो उन्होंने देखा कि कोई व्याध क्रौंच पक्षी जो अपने खेल में मस्त थे उनको मार रहा है। यह देखा तो आदि कवि के मुख में से शापोद्‌गार निकल गये और उन्होंने कहा—'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम् अगमः शाश्वतीः समाः'। हे निषाद, शाश्वत काल तक तेरी अप्रतिष्ठा रहेगी। इस तरह के शोकोद्‌गार उनके मुँह में आ गये और आगे उसी छन्द में विचार करते उन्होंने सारी रामायण की रचना की। शोक का श्लोक बना। शोकः श्लोकत्वं आगतः—शोक का परिणाम श्लोक में हुआ। जिस छन्द में शोक का श्लोक बना उसी छन्द में व्यास ने गीता की रचना की। आखिर विषाद में से प्रसाद कैसे मिले यह भगवद्‌गीता का तात्पर्य है। भगवद्‌गीता नित्य नवीन है, नित्य नूतन है, नवीन तत्व देती रहती है लेकिन विषाद का प्रसाद कैसे हो यह गीता का तात्पर्य है और ऐसी ही रचना व्यास भगवान ने की है।

गीतोपदेश : कालस्थल

कई लोग पूछते हैं—भगवद्‌गीता की रचना कुरुक्षेत्र में हुई कि दूसरी जगह हुई। ऐसी विषम परिस्थिति में भगवान ने उपदेश दिया यह आश्चर्य की बात है ऐसा वे कहते हैं। यदि हम ऐसी कोई किताब लिखना चाहते हैं तो हमको अलग अलग पुस्तकें पढ़नी होगी, चिन्तन करना होगा, प्रोफेसरों से मिलना पड़ता है तब थिसिस लिख पाते हैं और पी-एच० डी० कर पाते हैं। लेकिन भगवान ने इतने विषम समय में समूचे भारतीय तत्वज्ञान का सार रख दिया यह कैसे हो सकता है। ऐसी शंका ज्यादा करके पाश्चात्य विद्याविभूषितों को आती है। पाश्चात्य

लोग तो कहते ही हैं कि ऐसे विषम प्रसंग में समत्वयुक्त उपदेश कैसे दिया जा सकता है। रणांगण में शास्त्रों का तात्पर्य कैसे बताया जा सकता है। कई विद्वान लोग शास्त्रों का अध्ययन करके थिसिस लिखते हैं लेकिन उनको बहुत समय लगता है, इसलिये भगवान ने थोड़े समय में कुरुक्षेत्र में उपदेश दिया यह बात वे असम्भव मानते हैं। समझते नहीं कि भगवान माने कोई थिसिस लिखनेवाला, कोई प्रोफेसर नहीं हैं। भगवान तो कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम् शक्तिमान् हैं। सब सामर्थ्य उनमें भरा पड़ा है। इसलिये ऐसे विषम प्रसंग में भी समत्वयुक्त उपदेश देना उनको असम्भव नहीं। इतना ही नहीं, लेकिन जैसे काँटों में फूल ज्यादा शोभायमान होता है—वैसे ही ऐसे विषम प्रसंग में भगवान का समत्वयुक्त उपदेश ज्यादा शोभायमान होता है। विषाद से प्रसाद तक ले जाना, विषमता से समता तक ले जाना यही गीता का तात्पर्य है। अर्जुन की समत्व बुद्धि नष्ट हो गई थी, यह स्पष्ट है। उसको समत्व बुद्धि की ओर ले जाने के लिए गीता का उपदेश किया गया है।

कई लोग कहते हैं इतने थोड़े समय में कैसे उपदेश दिया जा सकता है। यहाँ तो समूचा तत्व-ज्ञान, बुद्धियोग, विश्वरूप दर्शनयोग, भक्तियोग इत्यादि का समूचा तत्वज्ञान थोड़े समय में और थोड़े में कह दिया है, यह कैसे हो सकता है। वे लोग समझते नहीं कि भगवान की लीला अपूर्व है। हमलोग कुछ अपूर्व चीज करने की इच्छा रखते हैं तो हमको बहुत प्रयास की जरूरत रहती है। शाहजहाँ ने ताजमहल बनाया, यह एक अपूर्व कला का नमूना है। लेकिन उसमें बीस हजार कारीगरों ने बीस वर्ष तक काम किया। तब इतना आश्चर्य चकित करनेवाला संगेमरमर का ताजमहल खड़ा हुआ। ऐसे शिल्प के लिए इतने वर्ष लगते हैं तो यह

गीता रूपी शब्दशिल्प के लिए कितना समय लगेगा ? ताजमहल अपूर्व है, लेकिन उसमें संसार संस्कार की छाया है। भगवद्गीता का शब्दशिल्प इन सब प्रपंचों से परे हैं। ताजमहल से उसकी कोई समानता नहीं। तुलना दो समान वस्तुओं की ही की जाती है। ताजमहल और भगवद्गीता की तुलना हो नहीं सकती। ताजमहल से भगवद्गीता की समानता नहीं। ताजमहल को बनने में बीस वर्ष लगे। भगवद्गीता एक घंटे में ही कही गई—यह उसकी खूबी है। अजन्ता-इलोरा का शिल्प प्रस्तरशिल्प है और अद्भुत है। वह पारमार्थिक चीज है। ताज-महल की तरह प्रापंचिक नहीं। इलोरा में कैलास को देखते हैं तो लगता है—सचमुच ही हम कैलास में आ गये। लेकिन इस शिल्प को बनने में कितना समय लगा। दो-तीन सदी तक कई लोगों ने काम किया। तब यह कला-मंडप तैयार हुये। भगवद्गीता को बनने में बिलकुल ही देरी नहीं लगी।

गीता इतिहास का इतिहास काव्य का काव्य

हमारे भारत देश में महाभारत और रामायण बड़े ग्रन्थ माने जाते हैं। व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम् ऐसा कहा जाता है। व्यास ने क्या नहीं किया ? महाभारत में भगवद्गीता होते हुए भी गीता इतिहास का इतिहास है। पाश्चात्यों में राइज ऑफ रोमन एम्पायर और फॉल ऑफ रोमन एम्पायर यह बड़े इतिहास के ग्रन्थ मान जाते हैं। लेकिन महा-भारत उससे भी बढ़ता है। महाभारत लिखने में व्यास को तीन वर्ष लगे। उनको गणपति जैसा रिपोर्टर मिला। लेकिन गणपति की शर्त थी कि जरा भी रुकूँगा नहीं। यदि आपको लिखाना है तो एक ही

प्रवाहधारा से विना रुके लिखवाते जाइये। व्यास ने उनकी शर्त मान्य की लेकिन अपनी एक शर्त रखी। उन्होंने कहा—आप जरा भी मत रुकिये। लेकिन जो कुछ भी लिखिये अर्थ समझ कर लिखिये। (स्टेनोग्राफर की तरह शब्द सुनकर ही मत लिखें।) गणेश जी भी बुद्धि के, विद्या के देवता थे। वे भी लिखते गये। वीच-वीच में कूटश्लोक कहकर व्यास जी ने गणेश को रुकवाये ऐसी मजेदार कहानी महाभारत में है। व्यास जी को महाभारत लिखवाने में तीन वर्ष लगे और गिवन को इतिहास लिखने में वीस वर्ष लगे, ऐसा कहते हैं। लेकिन गीता को ज्यादा समय नहीं लगा। क्योंकि वह इतिहास का इतिहास है। दूसरे देशों में इलियड ओडेसी वगैरह वड़े-वड़े महाकाव्य हैं लेकिन रामायण और महाभारत से एक भी महाकाव्य श्रेष्ठ नहीं। इसका कारण क्या? इसका कारण यह है कि इन दोनों ग्रन्थों का असर समूचे भारत पर हुआ। इतिहास तो वहुत लिखे गये, लेकिन उसका असर समूचे जनमानस पर हुआ हो ऐसा देखा नहीं गया। रामायण और महाभारत का असर द्वारका से लेकर कामरूप तक और कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक अमिट रहा है।

गीता अक्षीण नाविन्य

गीता काव्य का काव्य और इतिहास का इतिहास है। यह शब्द-शिल्प अद्भुत ही है। अजन्ता, इलोरा और ताजमहल का शिल्प भी अद्भुद है लेकिन वह क्षीण होनेवाला है। समय वीतता जायगा और वह क्षीण होता जायगा। भगवद्गीता का वैसा नहीं। प्रतिक्षणं यन्नवताम् उपैति तदेव रूपं रमणीयताः। भगवद्गीता में प्रतिक्षण नया भाव

मिलता रहता है। कई टीकाकारों ने टीका लिखी, लेकिन नई टीका लिखने की प्रेरणा होती ही रहती है। प्रतिक्षणं यन्नवताम् उपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः। इतना बड़ा यह अद्भुत काव्य है। इतिहास का इतिहास और काव्य का काव्य है। हमारे इतिहास में वह समाया हुआ है।

अर्जुन का भगवत्प्राप्ति प्रसंग

गीता के इतिहास का प्रसंग सोचने लायक है। पांडवों ने समझौता की कोशिश की। भगवान श्रीकृष्ण को समझौते के लिए कौरवों के पास भेजे। समझौता की कोशिश करनेवाला भगवान से बढ़कर और कौन श्रेष्ठ हो सकता है। लेकिन उनसे भी समझौता नहीं हुआ। भगवान को वापिस लौटना पड़ा। अब क्या किया जाय? अन्त में न्याय निर्णय के लिए भी युद्ध करना सोचा गया। दोनो तरफ से तैयारी होने लगी। कौरव भी तैयारी करने लगे और पांडव भी युद्ध की तैयारी करने लगे। दुर्योधन तो कुशल राजनीतिज्ञ था ही। बहुत सी सेना उसने इकट्ठी की। तब भी उसका लोभ बढ़ता ही रहा। संस्कृत में कहते हैं—लाभात् लोभः प्रवर्धते। लाभ से लोभ बढ़ता जाता है और लोभ अंधा ही रहता है। दुर्योधन तो अंधे का लड़का था ही। उसने अपनी सेना बहुत-बहुत बढ़ाई लेकिन यादव सेना भी चाहिए—ऐसा उसने सोचा और वह तो निकला भगवान के पास जाने के लिए। जो समझौता के लिए आये थे उनके सामने सेना की मांग करने के लिए जाना यह शर्म की बात है। लेकिन दुर्योधन लोभी था, उसको कुछ भी दिखाई नहीं दिया। उस ओर अर्जुन ने सोचा शस्त्र वगैरह तो ठीक है, लेकिन हमको भगवान चाहिये; ऐसा

सोचकर वह भी भगवान के पास जा रहा था। एक लोभ से जा रहा था दूसरा भक्ति में जा रहा था। दुर्योधन भगवान के द्वार पर पहले पहुँचा। द्वारपाल ने उनको प्रवेश नहीं दिया। दुर्योधन ने कहा—अरे, हमको पहचानते नहीं ? सारे भारतवर्ष के हम राजाधिराज हैं और तुम हमको जाने नहीं देते ! क्या समझ रहे हो अपने मन में ? द्वारपाल ने हाथ जोड़ कर कहा—महाराज, हमको मालूम है कि आप राजाधिराज हैं। हम आपका अपमान नहीं करते, लेकिन भगवान सोये हुए हैं, योगनिद्रा में निमग्न हैं। आपके जाने से उनकी योगनिद्रा का भंग होगा और उसका पातक लगेगा। इसलिये हम आपको जाने नहीं देते। भगवान की योग-निद्रा की बात तो अलग है, लेकिन अपने में भी कोई सोया हुआ रहता है तो उसको जगाना हम पातक समझते हैं। दुर्योधन ने पूछा—हमारे जाने से भगवान की योगनिद्रा कैसे क्या भंग होगी ? द्वारपाल ने उत्तर दिया—आखिर आप एक पक्ष के हैं, पार्टी के हैं। हाला कि पार्टी शब्द अँगरेजी है, वे लोग यह शब्द नहीं जानते थे, लेकिन कहा—भगवान ब्रह्मस्थिति में हैं, आप एक पक्ष के हैं इसलिये उनकी योगनिद्रा आपके जाने से भंग होगी। दुर्योधन ने कहा—हम यह सब भूलकर जायेंगे और चुपचाप बैठेंगे। आखिर हाँ ना कहकर दुर्योधन अन्दर गया। उसके पीछे अर्जुन आया। अर्जुन भी कुछ सवाल जवाब करके दाखिल हुआ। दुर्योधन अन्दर जाकर सोच रहा था—क्या करना, कहाँ बैठना, यहाँ तो कोई कहनेवाला नहीं था कि बैठिये, आसन लीजिये। ऐसे तो भगवान कहते, लेकिन वे योगनिद्रा में थे तो यह सवाल ही नहीं था। नहीं तो भी धनिक-दरिद्र के भगवान के पास अलग-अलग आसन थोड़े ही रहते

हैं। दुर्योधन तो राजाधिराज था। जहाँ जाता था वहाँ उसको सत्कार मिलता था, लेकिन यहाँ सत्कार करनेवाला कौन था। इसलिये स्वावलम्वी प्रयोग करना था। उसने सोचा—कौन सा आसन लूँ। उसको याद आया सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम्—सिर यही उत्तम गात्र है। भगवान का सिर यदि हाथ में आ गया तो भगवान भी हाथ में आ गये और यादव सैन्य मिलेगा ही। इस तरह सोचकर वह भगवान के सिर के पास बैठा। अर्जुन ने उलटा ही सोचा। सोचने की तरकीव भी अलग-अलग रहती है और एक मनुष्य की भी अलग-अलग परिस्थिति में अलग-अलग रहती है। उसने सोचा—नम्रता से हम पैर के पास बैठते हैं तो आदमी को वश कर सकते हैं। तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। नम्रता से पैर के पास बैठते हैं तो भगवान की कृपा हमपर होगी। ऐसा सोचकर अर्जुन पैर के पास बैठा। भगवान की योगनिद्रा खुली और उन्होंने सामने ही अर्जुन को देखा। भगवान की योगनिद्रा खुली इसका मतलब यह नहीं कि भगवान ने अयोग में प्रवेश किया। भगवान की निद्रा भी योगनिद्रा होती है, जागृति भी योग-जागृति होती है। चलना भी योग से चलना होता है, विहार भी योग-विहार होता है। भगवान की सब स्थिति योगमय ही रहती है। हाँ, तो उन्होंने अर्जुन को देखा और पूछा—कैसे आना हुआ? पहले से तो बताया नहीं और एकदम कैसे आना हुआ। अर्जुन ने कहा—भगवन, आपकी मदद माँगने आया हूँ। दुर्योधन ये सब सुन रहा था। वह घबराया, अर्जुन को सब मदद मिल जायगी और मैं वंचित रह जाऊंगा। इसलिये उसने कहा—मैं पहले आया हूँ। मुझे पहले मदद मिलनी चाहिये। वह कायदा-कानून की

बातें बोल रहा था। राज्यकर्ता लोग कानून की ही भाषा जानते हैं। कानून के अलावा उनको दूसरी भाषा आती ही नहीं। सेवा करना वे जानते ही नहीं। कानून ही उनकी सेवा है। कानून को वे अपरिहार्य मानते हैं। 'तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि' कानून की बात अपरिहार्य होती है। कानून बनते हैं तो शोक नहीं करना चाहिये, ऐसा राज्यकर्ता कहते हैं। लेकिन उनके कानून की भी कुछ मर्यादा होनी चाहिये। कबतक वे कानून बनाते रहेंगे। तो दुर्योधन ऐसे कानून की भाषा बोल रहा था। भगवान ने कहा—तुम पहले आये हो, तुमको मदद दूँगा। लेकिन अर्जुन को भी मैंने पहले देखा, इसलिये उसको भी मदद दूँगा। मैं अकेला निःशस्त्र एक पक्ष में रहूँगा और मेरी यादव सेना सशस्त्र दूसरे पक्ष में रहेगी। बोलो, तुमको क्या चाहिये ? दुर्योधन को लगा—अर्जुन सेना माँगेगा। इसलिये वह जल्दी से बोला—हमको यादव सेना चाहिये। जैसी जिसकी दृष्टि वैसे ही वह दूसरे में देखता है। अर्जुन तो यादव सेना माँगनेवाला था ही नहीं। अर्जुन ने कहा—हमको आप चाहिये। यादव सेना से हमको कुछ काम नहीं। दुर्योधन संतुष्ट हुआ। अर्जुन भी संतुष्ट हुआ। दोनों संतुष्ट होकर गये और बाद में युद्ध की शुरुआत हुई।

अर्जुनोत्साह

अर्जुन ने अपने घोड़े की लगाम भगवान के हाथ में दी थी। सिर्फ घोड़े की ही लगाम नहीं अपनी मनोवृत्ति की लगाम भी उसने भगवान के हाथ में दी थी। अर्जुन उत्साह से सेना को देखता है और भगवान को कहता है—

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ हे भगवन, दोनों सेनाओं के बीच मेरा रथ स्थापित करो जिससे कि—यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धु-कामानवस्थितान् । कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ बड़े उत्साह से वह बोल रहा है। आगे कहता है—योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः । धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ इस दुर्बुद्धि दुर्योधन के पक्ष में कौन-कौन है, उसका प्रिय करने की इच्छा कौन-कौन रखता है, यह देख लूँ। उत्साह भरे वचन अर्जुन बोल रहा है।

अर्जुन की विपरीत अवस्था

लेकिन, जब भगवान ने रथ दोनों सैन्य के बीच रखा और अर्जुन को स्वजन का दर्शन हुआ तो कहता है—आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान् सखींस्तथा। उसकी वृत्ति बदलती है। भगवान का लीला-चरित्र वह सामने देखता है, सगुणमूर्त्ति सामने देखता है तब भी उसके मन में विपरीत विचार आता है और बोलता है—आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्-पौत्रान्सखींस्तथा। सारा प्रपंच लड़ने के लिए खड़ा किया लेकिन अब ऐसी बातें बोलता है। स्नेह की दृष्टि हम समझ सकते हैं, लेकिन वह तो आसक्ति की दृष्टि से बोल रहा है और बाद में भगवान को ही उपदेश देता है। सामने ही भगवान हैं तो हमको सोचने की कोई जरूरत नहीं, भगवान जो कहता है वह करना चाहिये, लेकिन अर्जुन मोहित हुआ है और ये सब बातें बोलता है। आगे कहता है—येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च। त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ भारतीय संस्कृति में सुख भोग के लिए लड़ा नहीं जाता। भारतीय संस्कृति को छोड़कर अर्जुन बोल रहा है। कहता है—जिनके लिए राज्य,

भोग, सुख की हम इच्छा करते हैं, वे ही मरने के लिए तैयार हुए हैं। यह क्या अर्जुन की लड़ाई का ध्येय था ? लड़ाई तो न्याय निर्णय के लिए वह कर रहा था। दुर्योधन का पक्ष अलग था। उसको सुखोपभोग की लालसा थी। उसका पक्ष अपना समझकर अर्जुन बोल रहा है। यह भारतीय संस्कृति के अनुरूप नहीं है। भारतीय जीवन ऐसा नहीं है। उसमें तो—अपि प्राज्यं राज्यं तृणमिव परित्यज्य सहसा—आता है। हमारी संस्कृति में राजा को ज्यादा मान नहीं दिया जाता। जब वह राज्य छोड़ता है तभी उसको मान दिया जाता है। अर्जुन उलटी बात ही बोल रहा है। वह कहता है—त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च—यह माया की भूमिका है। कोई भी कर्म, कोई भी क्रिया चाहे कैसी भी हो कर्तव्य रहता है तब करनी पड़ती है। योगिनां कर्म कुर्वन्ति संगम् त्यक्त्वात्मशुद्धये। यह ध्येय अर्जुन ने छोड़ दिया था और इस कारण भी वह कहता है—निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव। न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे॥ उसका गला सूख रहा है, हाथ काँप रहा है, वह खड़ा नहीं रह सकता, ये सब विपरीत लक्षण हैं। वह भगवान को तरह-तरह से उपदेश दे रहा है। यदि उपदेश ही देना था तो पहले द्वारका में ही देना चाहिये था। जब रथ पर बिठाया, घोड़े की लगाम दी, बाद में उसको मोह-माया हो रही है।

अभ्युदय निःश्रेयस धर्म : उसमें गौणमुख्यता

भारतीय जीवन का तत्व भोग नहीं त्याग है। अभ्युदय भारतीय

जीवन में है, लेकिन 'अभ्युदय निश्रेयसो धर्मः' कहा है। अभ्युदय चाहिये, वह आता भी है, लेकिन वह निश्रेय के साथ चाहिये। निश्रेयस् मुख्य बात है और अभ्युदय गौण बात है। भगवान की प्राप्ति होती है तो अभ्युदय होता ही है। अर्जुन ने यहाँ विपरीत पक्ष ही रखा था। इसलिये उसके लक्षण भी विपरीत होंगे ही। अभ्युदय की जरूरत है, लेकिन निश्रेयस् की प्राप्ति को छोड़कर उसकी जरूरत नहीं। इस खयाल से एक कहानी याद आ रही है—एक देहात में एक आदमी रहता था। देहात में क्या धंधा किया जाय, ऐसा उसने सोचा और एक छोटी सी दूकान शुरू की। वह और उसकी पत्नी भक्ति में निमग्न थे। गाँव में दूकान थी तो ज्याद लोग नहीं आते थे, तो ज्यादा समय उनका नाम-स्मरण में ही जाता था। माल देते थे वह भी सबको भगवत्स्वरूप समझ कर ही। उसके यहाँ कालाबाजार और सफेद बाजार नहीं था। जो ईश्वर का स्मरण करता है वह कालाबाजार कर नहीं सकता। ऊपर-ऊपर से स्मरण करता है तो अलग बात है, लेकिन अन्तस्तर से स्मरण करता है तो वह कालाबाजार कर नहीं सकता। उसके लिए वह तमः प्रकाशवत् असम्भव है। लोग उसकी दूकान पर माल खरीदने के लिए जाते थे। उस माल पर नामस्मरण का भी असर होता था। नामस्मरण के साथ माल बेचता है तो उसमें भगवत्स्मरण का असर रहता ही है इस-लिये लोग उसकी दूकान पर ज्यादा जाने लगे। दूसरे देहातवाले भी उसके यहाँ आने लगे। बाद में तो दूसरे के यहाँ माल सस्ता भी हो तब भी लोग इसके यहाँ ही आने लगे। दूकानवाले की तरक्की होने लगी। उसका अभ्युदय होने लगा। लेकिन समझना चाहिये कि निश्रेयस् के कारण

अभ्युदय होता है। उसने तो सोचा—अब दूकान बढ़ रही है तो पटना, दिल्ली जैसे बड़े-बड़े शहरों में क्यों न रखी जाय। लोगों की सेवा क्यों न की जाय। विनोबा जी कहते ही हैं कि व्यापारी लोग दानी होते हैं। उनका व्यापार लोगों की सेवा की दृष्टि से चलता है। हाँ तो उस आदमी ने बड़े शहर में दूकान करवाई। एक—की दो और दो की तीन ऐसे दूकान बढ़ने लगी। मुहल्ले-मुहल्ले में उसकी दूकान फैल गई। उसके लड़के-बच्चे भी दूकान पर बैठने लगे। धन का कारोबार बढ़ गया तो नामस्मरण कम हुआ। एक दिन उसकी स्त्री ने कहा—तुमने तरक्की तो ज्यादा की है—लेकिन भगवत्स्मरण कम हुआ है। उस व्यापारी ने कहा—तुम्हारी बात ठीक है, लेकिन हमको समय ही नहीं। लोग कहते हैं। टाइम इज मनी। समय की तुलना धन के साथ करते हैं। भगवान ने गीता में कहा है—कालः कलयताम् अहं। काल तो भगवान का स्वरूप है। उसकी तुलना धन के साथ कर सकते हैं क्या ? अँगरेज लोग तो बनियाँ हैं—इसलिये उन्होंने काल की तुलना धन के साथ की है। भगवाम ने चौबीस घंटे हमको दिये हैं तो कुछ समय भगवत्स्मरण के लिए भी देना चाहिये। बहुत से लोग कहते हैं, हमको समय नहीं। लेकिन किया क्या ? वैसे ही एक दिन जैसे आपने यह विवरण सुनने का आयोजन किया है उसी तरह उस शहर में एक बड़े महात्मा जी आये थे। उनके प्रवचन का आयोजन किया था। ये सेठ तो नगरपालिका के अध्यक्ष थे। लोगों ने उनके पास जाकर कहा—ऐसे महात्मा जी आ रहे हैं, उनका प्रवचन होगा। उसकी निमंत्रण-पत्रिका में आपका नाम छपवाते हैं। आपको आना पड़ेगा। सेठ जी ने कहा—बात तो ठीक है लेकिन समय

ही कहाँ ? लोगों ने कहा—नगरपालिका के अध्यक्ष हैं—आपके बिना कैसे चलेगा ? सेठ जी ने कहा—ठीक है नाम रखना है तो रखो, लेकिन हम आनेवाले नहीं। हमारा नुकशान होगा। एक घंटे में करोड़ों रुपये का नुकशान होगा। कलकत्ते, बम्बई जैसे बड़े-बड़े शहर में ऐसा ही होता है। सेठ लोगों के पैखाने में भी टेलीफोन रखा जाता है। एक ओर उनकी शौच-क्रिया चलती है तो दूसरी ओर उनकी धन कमाने की क्रिया चलती है। दोनों में विशेष फर्क नहीं। हाँ तो सेठ जी ने कहा—आपलोग नाम भले ही लिखें, लेकिन हम नहीं आयेंगे। लोगों ने कहा—आप नगरपालिका के अध्यक्ष हैं, आप नहीं आयेंगे, यह शोभास्पद नहीं होगा। सेठ जी ने कहा—ठीक है, देखा जायगा। अभी नाम लिखना है तो लिख सकते हैं। आखिर महात्मा जी आये। उनका प्रवचन शुरू होनेवाला था। लोगों ने आकर सेठ जी से कहा—सेठ जी, आपको आना ही पड़ेगा। सेठ जी ने कहा—हमने तो पहले से ही कहा था कि हम नहीं आयेंगे। लोगों ने कहा—आपको एक घंटे में जो नुकशान होगा वह दूसरे किसी समय पर निकाल सकते हैं। लेकिन अभी आप चलिये। व्यापारी का ऐसा ही रवैया रहता है। आखिरकार हाँ-ना करते-करते सेठ जी आये और प्रवचन में बैठे। वहाँ उनको धन से क्या सम्बन्ध था ? लेकिन उनका मन प्रवचन की ओर नहीं था। धन की ओर उनका ध्यान लगा हुआ था। भगवान ने सोचा—अबतक तो हमने सहन किया। हमारे नामस्मरण से ही इसकी तरक्की हुई है और अब वह उन्मत्त हो गया है। शरीर से तो प्रवचन सुनने आया है, लेकिन मन दूसरी जगह पर है। ऐसा कई लोगों को होता है। हमारे पास भी कुछ

लोग आते हैं और कहते हैं दूसरे समय में तो मन उस-उस काम में लगा रहता है, लेकिन प्रार्थना के समय पर ही तरह-तरह के विचार आते रहते हैं। वैसा ही उस सेठ का था। उसको भी धन के विचार आते थे। भगवान ने सोचा, अब इसको कुछ पाठ देना चाहिये। उन्होंने उसी सेठ का रूप धारण किया और सेठ की दूकान पर गये। दूकान में जाकर नौकरों को कहा—देखिये आजकल हमारे शहर में ठग की टोली आई है। वे लोग हमारे जैसा ही वेश धारण करते हैं और घर में, दूकान में आते हैं। यदि ऐसे कोई आयेंगे तो उनको आने नहीं देना। दूकान से निकल कर भगवान सेठ की पत्नी के पास गये और कहा—देखो आज-कल हमारे शहर में ठगों की टोली आई है। नट की तरह वे लोग राजा-भिखारी जैसा चाहे वैसा रूप धारण करते हैं। यदि हमारे जैसा कोई घर में आया तो उसको आने नहीं देना। इधर प्रवचन खतम हुआ और सेठ अपनी दूकान पर चले। दूकान में प्रवेश कर रहे थे नौकरों ने उनको जाने नहीं दिया और कहा—आप रास्ते पर ही रहिये। आपको हम समझते हैं कि आप कौन हैं। आप ठग हैं और हमको मूर्ख बना रहे हैं। यहाँ से जाइये नहीं तो नतीजा अच्छा नहीं आयगा। सेठ जी ने सोचा यह बात क्या है। इनलोगों ने शराब-भाँग तो नहीं पी। हम सेठ हैं और हमको जाने क्यों नहीं देते? ऐसा उन्होंने प्रश्न किया। नौकरों ने कहा—ज्यादा बात की जरूरत नहीं, सीधे रास्ते से जहाँ जाना हो वहाँ चले जाइये। वे दूसरी दूकान पर गये। दूसरी दूकानवाले मुनीम को भी टेलीफोन करके पहले से सूचना दी गई थी। इसलिये उन्होंने भी सेठ जी को आने नहीं दिया। आखिरकार वे पीछे के रास्ते से अपने

घर के पास गये और अपनी स्त्री को अवाज दी। उसको भी पढ़ाया गया था। उसने कहा—देखो ज्यादा बात नहीं करना। और स्त्री से ऐसी बात ठीक भी नहीं। नगर सेठ को बहुत ही आश्चर्य हुआ। यह बात क्या है। वे तब राजा के पास गये। राजा ने पूछा—क्यों कैसे यहाँ आना हुआ ? सेठ जी ने कहा—मैं नगरपालिका का अध्यक्ष हूँ। म्युनिस्पैलिटी का कारोबार देखता हूँ। लेकिन मेरे घर में ही व्यवस्था नहीं। मेरे घर में ही मुझे पहचानते नहीं। क्या किया जाय ? राजा ने कहा—यह तो बड़ा अन्याय है। हमारे राज्य में ऐसा कैसे चल सकता है। उन्होंने मंत्री महाशय को बुलाया और पूछा—इसके लिए क्या किया जाय। मंत्री महाशय ने कहा—हम सबकुछ कर देते हैं और दो-चार घोड़सवार उन्होंने नगर सेठ के यहाँ भेज दिये और कहा—कि जो सेठ आपके यहाँ बैठे हैं, उनको अभी ही अभी राजा बुलाते हैं। भगवान तो दरबार में गये। दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं था। राजा, मंत्री सब दुबिधा में पड़े। इसमें से किसको सच्चा सेठ माना जाय। मंत्री महाशय ने कहा—मैं सबकुछ तरकीब जानता हूँ। इन दोनों में से जो तुरंत जवाब देंगे वह सच्चा सेठ होगा। मैं प्रश्न पूछता हूँ। उसका उत्तर एक ही सेकेंड में बिना सोचे तुरन्त देना होगा। मन्त्री महाशय ने पूछा आपका महल तो बड़ा है। उसमें कितने किवाड़ और कितनी खिड़कियाँ हैं ? भगवान ने तुरंत ही उत्तर दिया। लेकिन सेठ जी उत्तर नहीं दे सके। अपना घर हो तो भी कोई किवाड़ और खिड़कियाँ थोड़े ही गिन-कर याद रखता है ? सेठ सोचते रहे। राजा ने कहा—ये ठग है और यह सच्चा सेठ है। ठीक ही बात थी। भगवान ही सत्य हैं। बाकी सब

असत्य ही है। अब राजा ने सोचा इस ठग को क्या सजा दी जाय। ज्यादा से ज्यादा कौन सी सजा हो सकती है। राजा ने कहा—लोगों के सामने सबक रखने के लिए इस ठग को गदहे पर बैठाया जाय और घूसे मारते-मारते नगर से बाहर कर दिया जाय। सेठ जी ने सोचा यह क्या है। सारी दुनियाँ ही बदल गई है। बात ठीक ही थी। भगवान अनुकूल ही नहीं तो दुनियाँ बदलती ही है। सेठ जी तो घूसें मारते-मारते गाँव के बाहर कर दिये गये। शाम को वे गाँव के बाहर एक पेड़ के नीचे जाकर बैठे। उन्होंने कुछ भी खाया नहीं था, खाया था तो मार ही खायी थी। उसी पेड़ के नीचे सेठ जी हर रोज सुबह शौच-मुखमार्जन के लिए और टहलने के लिए आते थे और टहलकर वापिस जाते थे। आज वे सोच रहे थे। मैंने क्या पाप किया कि मेरी ऐसी अवस्था हुई। इनकी समझ में ही नहीं आता था। रात ऐसे ही बैठे-बैठे गई। सुबह भगवान उस सेठ के मुआफिक एक हाथ में सोंटा और दूसरे हाथ में लोटा लेकर उस पेड़ के पास आये और सेठ जी को पूछा क्यों ठीक है न ? सेठ जी ने कहा—तूने ही हमारा सबकुछ बिगाड़ा है और ठीक है ऐसा पूछता है। भगवान ने कहा—हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा ? हमने तो तुम्हारी तरक्की की। सेठ जी ने कहा—तरक्की किसकी ? तू तो ठगों का ठग है। भगवान ने कहा—देखो तुमने मेरा स्मरण कम कर दिया। मेरा स्मरण, ऐसा तो भगवान ने नहीं कहा—भगवान का स्मरण कम कर दिया, ऐसा उन्होंने कहा—आगे कहा–स्मरण कम किया, लेकिन कम से कम प्रवचन में तो ध्यान देना चाहिये था यह तुम्हारी ड्यूटी थी। तो मैं तुमको सबक सिखाना चाहता हूँ ऐसा कहकर लोटा और

सोंटा सेठ जी के हाथ में दिया और खुद अदृश्य हो गये। सेठ जी को एकदम तो ख्याल नहीं आया कि यह भगवान है। लेकिन बाद में ख्याल आया कि यह भगवान ही आये थे। उन्होंने घर पर जाकर अपनी पत्नी को कहा—देखो, हम लड़कों को पूरा व्यापार सौंप देते हैं और हम यहाँ से जाते हैं। पत्नी को एकदम आश्चर्य लगा। लेकिन सेठ जी ने कहा—ज्यादा बात की जरूरत नहीं। तुमने मुझे कहा ही था—कि आजकल भगवत्स्मरण छूट रहा है। तो मैं अब भगवत्स्मरण के लिए जा रहा हूँ।

तो कहानी का सार यह है कि अभ्युदय आया तो निश्रेयस् छूटना नहीं चाहिये। सिर्फ अभ्युदय चाहेंगे यह ठीक नहीं। भगवान ने अभ्युदय—निश्रेयस् करानेवाला रास्ता बताया है। 'दुःखेन साध्वी लभते सुखानि'—ऐसा महाभारत में वाक्य है। 'भोगे रोग मयं'—यह भर्तृहरि का वाक्य प्रख्यात ही है। भोग की ओर जायेंगे तो रोग ही होगा।

अर्जुन का श्रवणाधिकार

अर्जुन ने भगवान की लीला देखी थी, अर्जुन का श्रवणाधिकार भगवान की सगुन साकार मूर्त्ति सामने बिठाई थी और अब उसको मोह हुआ। अर्जुन को मोह हुआ और हम–निर्मानमोहा हैं, ऐसा नहीं। उसको एकबार ही मोह हुआ, हम तो हमेशा मोह में ही हैं। वहाँ जो सिपाही थे, अठारह अक्षौहिणी सैन्य था वे निर्मानमोहा थे, ऐसी बात नहीं। अर्जुन को भगवत् कृपा से पहले कभी मोह नहीं हुआ था। अभी उसको मोह हुआ। पहले वह मोह में नहीं पड़ा था, इसलिये वह गीता सुनने का अधिकारी हुआ।

तो गीता की शुरुआत विषादयोग से शुरुआत हुई और आगे भगवत्-कृपा से बोधामृत होगा। तो हम प्रार्थना करते हैं कि जिसके कारण गीता का अवतरण हुआ है वह ध्यान में रखना चाहिये और प्रार्थना करनी चाहिये कि—

सर्वे अत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात्॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

★

अध्याय २, ३

सर्वोदय गीता-यज्ञ के अवसर पर दिया गया महर्षि शिवाजी भावे का प्रवचन दिनांक:—२०—६—६३—स्थान—दरभंगा।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतःस्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै—
र्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्‌गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः॥

भगवान की पुरुषार्थ प्रेरणा

अर्जुन की तीव्र शोकावस्था भगवान ने देखी। अर्जुन की आशक्ति, अर्जुन का मोह, बहुत तीव्र था। तब भगवान ने सोचा इसके लिए उपाय भी तीव्र चाहिये। जैसे कोई रोगी का रोग तीव्र रहता है तो वैद्यराज उसको औषधि तीव्र देते हैं। गाढ़ अंधेरे को दूर करने के लिए उतना ही तेज प्रकाश चाहिये। दुश्मन की फौज बहुत बड़ी है तो उसका मुकावला करने के लिए बहुत ज्यादा फौज चाहिये। भगवान ने ऐसा ही किया। अर्जुन की शोकमय, मोहमय आशक्तिमय दशा देखकर भगवान ने कहा—

क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्वय्युपपद्यते। क्षुद्रं हृदयदौर्वल्यं त्यक्त्‌-वोत्तिष्ठ परंतप। बहुत तीव्रता से भगवान कह रहे हैं—हे अर्जुन, तू

बिलकुल निर्वीर्य मत हो—क्लैव्यं मा स्म गमः। यह क्षुद्र, दौर्बल्य, आशक्ति-मय, मायामय, मोहमय दशा को छोड़कर तू खड़ा हो। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—यदि समूची गीता छोड़ी जाय और यह एक श्लोक रखा जाय, तब भी जनता के पुरुषार्थ के लिए यह काफी है। यह श्लोक भगवान का पहला वाक्य है। भगवान का पहला वाक्य ही जनता को पुरुषार्थ प्रदान करनेवाला है। यह मोह छोड़ने का आदेश भगवान ने अर्जुन को दिया है। रामायण में भी ऐसी ही कहानी आती है। रामायण में रावण सीता को ले गया और सीता की खोज के लिए कोशिश की गई। सेना भेजी गई। वानरों की सेना सोचने लगी अब इतना समुद्र लांघकर लंका में कौन जायगा ? जामवन्त सेना का सेनापति था। सम्पाति पक्षी देख रहा था कि सीता लंका में है। लेकिन लंका में जायगा कौन, यह सवाल था। सिर्फ जाना ही नहीं था, संदेश लेकर वापिस आना था। यह बड़ा कठिन कार्य था। जांबुवंत सेनापति दक्षिण की ओर देखकर खड़ा था और सोच रहा था कि समुद्र पार करके कौन जायगा ? राम का संदेश कौन पहुँचायगा और सीता का संदेशा कौन लायगा ? किसी ने कहा—हम दस योजन जा सकते हैं, तो किसी ने कहा—हम बीस योजन जा सकते हैं। कोई तीसरे ने कहा—हम तीस योजन जा सकते हैं। लेकिन उतने से क्या होगा। यहाँ तो सौ योजन जाना था और वापिस आना था। फिर अंगद ने कहा—मैं सौ योजन जा सकता हूँ, लेकिन मुझमें वापस आने की ताकत नहीं। यह क्या काम का ? हिटलर ने समूचा यूरोप जीत लिया लेकिन वह पराजित यूरोप वापस लेने के लिए ब्रिटिश सेना फ्रांस के किनारे उतारी गयी। और

सन की सब ब्रिटिश सेना घेरकर पकड़ ली गयी। एक भी सैनिक वापस नहीं लौटा। यह जैसे हुआ—वैसे ही अंगद की बात थी। वह वापस नहीं लौट सकता था। आखिर जांबुवंत ने हनुमान की ओर देखा। हनुमान मौन रखकर खड़े थे। उनमें शक्ति तो काफी थी। लेकिन वे चुपचाप बैठे थे। जांबुवंत ने हनुमान को कहा—भगवान की कृपा से तुम्हारे पास काफ़ी शक्ति है। तुम यह काम कर सकते हो। हनुमान ने कहा—भगवान राम की कृपा से जरूर सागर का उल्लंघन मैं कर सकता हूँ। राम की कृपा से मुझ में शक्ति आई है। जांबुवंत ने हनुमान को यही कहा था तुझ में शक्ति है तू उठकर खड़ा हो। क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते। क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वो तिष्ठ परंतप॥ वही बात भगवान ने अर्जुन को कही है। अर्जुन को कहा तुम क्लीवता को छोड़कर, हृदयदुर्बलता को छोड़कर कर्त्तव्य के लिए तैयार हो जाओ।

मोह का गुरुपूजावरण

लेकिन अर्जुन का मोह, माया, आशक्ति इतने तीव्र थे कि इस प्रबोधन से भी उसमें शक्ति नहीं आई और आगे वह भगवान को कहता है—कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन। इषुभिः प्रतियोत्सामि पूजार्हावरिसूदन॥ आशक्ति की बात, क्लीवता की बात अर्जुन ने पहले अध्याय में कही थी। लेकिन सज्जनों के सामने ऐसी बात कैसे रख सकते हैं। इसलिये वह अपने मोह को अब आवरण दे रहा है। सज्जनों के सामने मोह, बुद्धिमान् लोग ! नग्नस्वरूप में आता नहीं। मोह साधू का स्वरूप लेकर ही आता है। रावण की यही बात थी। सीता को

लेने के लिए वह अपने मूल रूप में सामने आ नहीं सका। साधु स्वरूप उसने ग्रहण किया और सीता का हरण किया। अर्जुन के मन में स्वजनासक्ति थी, उसका ध्येय बदला हुआ था, लेकिन भगवान के सामने यह बात अब कैसे रख सकता है, इसलिये उस मोह को उसने आवरण दिया। इसको शर्करावकुन्ठित करना कहते हैं। कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन। इषुभिः प्रतियोत्सामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ऐसी बातें अपने मोह को आवरण देकर अर्जुन बोल रहा है।

मोह की परमावधि

मोह की परमावधि तो आगे होती है। अर्जुन कहता है—हे भगवन, मैं भीष्म–द्रोण की बात करता हूँ यह तो ठीक, लेकिन जय किसकी होगी। हमारी जय होगी या कौरवों की जय होगी ? ऐसा प्रश्न अर्जुन पूछ रहा है। कोई आदमी अगर पूछे कि जय किसकी होनी चाहिए—सत्य की या असत्य की, व्यवस्था की कि अव्यवस्था की, अंधेरा की कि प्रकाश की तो यह प्रश्न मोह की परमावधि दिखाता है। सत्य की जय कि असत्य की जय व्यवस्था की जय कि अव्यवस्था की जय, अंधेरे की जय कि प्रकाश की जय। यह प्रश्न पूछने जैसा ही नहीं है। दैवी सम्पत्ति ही लोग चाहते हैं, प्रकाश ही चाहते हैं, व्यवस्था ही चाहते हैं। इसके बारे में प्रश्न हो ही नहीं सकता। लेकिन अर्जुन की मोहावस्था इतनी घनी है कि उसको यह भी मालूम नहीं होता। फिर वह कहता है—हे भगवन मैं तेरा शिष्य हूँ, मेरा मोह आप दूर करें। मेरा मोह जा नहीं रहा। तब भगवान कहने के लिए तैयार हुए।

मोह की कठिनता

तबतक भगवान सुन रहे थे और अर्जुन मोह की, माया की बड़ी-बड़ी बातें कर रहा था। बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृत बन्धनमन्यत्। दारुभेद निपुणोऽपि षडंध्रीः निष्क्रियो भवति पंकज कोशे॥ बहुत तरह के बन्धन होते हैं। लेकिन मोह का, माया का, सबसे बड़ा बन्धन रहता है। उसको कैसे दूर किया जाय। भँवरा बड़ी-बड़ी लकड़ियाँ चीड़ करके पार निकलता है। लेकिन वही भ्रमर कमलकोश में बन्द होता है तब कमल-कोश को चीर कर बाहर नहीं निकल सकता, बाहर निकलना उसके लिए मुश्किल हो जाता है।

भौंरा कमलकोश में निश्क्रिय हो जाता है। अर्जुन वैसा ही बन्धन में पूरा जकर जाता है बन्धन बड़ा नहीं है लेकिन मुलायम बन्धन ही बड़ा बन्धन होता है। कई लोग बड़े बड़े काराग्रह से जेल से भागकर जा सकते हैं। लेकिन आसक्ति का मुलायम बन्धन तोड़ना ही बड़ा कठिन होता है। कवि ने बाद में बड़ा मजा किया है—भौंरा अन्दर बैठा-बैठा क्या सोच रहा है ? वह सोच रहा है—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः।
एवं विचिन्तयती कोशगते द्विरेफे हा हन्त हन्त नलिनीं गजभुज्जहार॥

कमलकोश में बैठा भौंरा सोचता है, रात जायगी, सुबह होगी, सूर्य-प्रकाश होगा और कमल खिलेगा। हम निकल पायेंगे। लेकिन उतने में हाथी उस कमल को उखाड़कर फेंक देता है ले गया। तो कमल अपने आप विकसित होगा, ऐसा होता नहीं, बन्धन को स्वतः तोड़ना पड़ता है। कई

लोग कहते हैं। अभी तो हम—माया मोह में पड़े हुए हैं, वृद्धावस्था आयेगी तो ये सब छोड़ेंगे। ऐसा होता नहीं; जो संस्कार होते हैं, वह अपने-आप छूटते नहीं उसको छोड़ना पड़ता है।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता, तपो न तप्तं वयमेव तप्ता।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा कालो न यातो वयमेव याता॥

तृष्णा जीर्ण नहीं होती, वह तो बढ़ती ही रहती है। उसको छोड़ना पड़ता है। इस तरह माया के बन्धन भी छोड़ने पड़ते हैं।

निर्गुण निराकार तत्त्व का उपदेश

अर्जुन आखिर भगवान की शरण गया और कहने लगा—शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। मैं तेरा शिष्य हूँ। मुझे उपदेश दो। भगवान ने यह सुना; मन में ही सोचा कि क्या वजह है, मेरा चरित्र मेरी जीवन-लीला सब अर्जुन ने देखे, मुझे प्रिय और सखा कहता है, तब भी इसका मोह क्यों नहीं जाता, इसका कारण क्या? इसलिये भगवान कहते हैं—नैतत्त्वय्युपपद्यते—हे अर्जुन ये सब तुम्हारे लिए योग्य नहीं है। इसका मतलब ऐसा तो नहीं होता कि दूसरे के लिए ये सब योग्य है। दूसरे के लिए भी योग्य नहीं, लेकिन अर्जुन के लिए तो हर्गिज नहीं। क्योंकि उसने भगवान की सगुण चरित्र लीला देखी थी, सगुणसाकार चरित्र देखने का अपूर्व भाग्य उसको मिला था तब भी उसके माया मोह जाते नहीं। इसलिये अब भगवान उसको निर्गुण निराकार तत्त्व के बारे में कहते हैं। भगवान के लीला चरित्र से भी वह निर्मानमोहा नहीं होता तो भगवान उसको निर्गुण निराकार का उपदेश दे रहे हैं।

आत्मा की अखंडता
भेद से खेद

भगवान अर्जुन को कहते हैं तुम मारनेवाला, मरनेवाला ऐसे सोच रहे हो, लेकिन आत्मतत्त्व सर्वव्यापी है। वह मारनेवाला भी नहीं और मरनेवाला भी नहीं। अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे। गता-सूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥ न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः। न चैव न भविष्यामः सर्वेवयमतः परम्॥ ये सब राजा पहले भी थे, अभी भी हैं और आगे भी होंगे। सृष्टि में उनका अभाव नहीं। इस श्लोक में तीन पुरुष तीनो काल में रहते हैं, यह बताया है। काल में, पुरुष में, परिस्थिति में खंड पड़ता है तो वह शोक का कारण होता है। आदमी के ये सब भेद मिटने चाहिए। इससे ही झगड़े और प्रपंच में आदमी पड़ता है। एक तो है कालकृत भेद। पहले के लोग कहते हैं— पहले का जमाना स्वर्णयुग था, सत्ययुग था और अभी का जमाना कोयले का युग है, कारखाने का युग है। अभी के लोग कहते हैं, डार्विन की थ्योरी के मुताबिक पहले का जमाना वानरयुग था। हमारे पूर्वज वानर थे। इसको उत्क्रान्तिवाद कहते हैं। काल को पकड़ कर दोनों में भेद होता है और भेद से खेद होता है। महाराष्ट्र के लोग कहते हैं—मराठाओं ने तो राष्ट्र का बहुत काम किया। राष्ट्र की उन्नति की इन गुजरातियों से कुछ होनेवाला नहीं। गुजराती लोग तो वनियाँ हैं। गुजराती लोग कहते हैं—मराठाओं ने राष्ट्र का कुछ काम पहले किया होगा लेकिन अभी तो गुजरात, महाराष्ट्र का पूरा अर्थशास्त्र हमारे हाथ में है। मराठी-गुजराती यह भेद स्थानकृत भेद है। यदि आत्मा को कालभेद, स्थानभेद

से अपरिछिन्न, अखंड देखते हैं तो ये सब भेद और उससे होनेवाला खेद होगा नहीं। उत्तर के लोग कहते हैं—आरंभ शूराः खलु दाक्षिणात्याः। दक्षिण के लोग आरंभशूर ही रहते हैं। तो दाक्षिणात्य कहते हैं उत्तर के लोग कुछ जानते नहीं सब बात की उत्तरक्रिया करना वे जानते हैं। कुछ लोग कहते हैं—पूर्व में सूर्य का उदय होता है उसी दिशा में पूजा पाठ करना चाहिए तो कुछ लोग कहते हैं—पश्चिम की ओर कावा है, मक्का है, मदीना है, इसलिए अल्लाह की इबादत उसी दिशा की ओर मुँह करके करनी चाहिए। कवि ने कहा है—

पूरब को कोई जावे पश्चिम को कोई धावे।
प्रभु का न भेद पावे विरथा फिरे है फेरे॥

कोई पूरब को जाता है तो कोई पश्चिम को जाता है। लेकिन दोनों को मिलानेवाला कोई नहीं है। एक एक को पकड़ कर तो दूसरा दूसरा को पकड़ कर झगड़ा करते रहते हैं। कई लोग कहते हैं—स्त्रियाँ भावना प्रधान रहती हैं, उनको दूसरे कुछ नहीं आता। तो कुछ स्त्रियाँ कहती हैं पुरुष तर्क प्रधान और कठोर होता है। यदि हम एक दिन भी नहीं रहेंगे तो वे लोग लौज में जायेंगे। खुद पका नहीं सकते, रसोई कर नहीं सकते। हम हैं इसलिये ही घर चलता है। इस तरह का स्त्री-पुरुष भेद कई लोग निकालते हैं। लेकिन आत्मतत्त्व में ऐसा कोई भी भेद नहीं है। पूर्व और पश्चिमवाले भी अपना-अपना भेद निकालते हैं। इंगलैंड के राजकवि रुल्यार्ड केप्लीन ने कहा था—वेस्ट इज वेस्ट एन्ड इस्ट इज इस्ट ट्विन्स कैन नेवर मीट। हम बहुत आगे बढ़े हुए हैं। हमारी तुलना में पूर्ववाले कुछ नहीं। तो पूर्व के लोग कहते हैं—यह पश्चिमवाले तो आधि

भौतिक हैं, भोगवादी हैं। हमारी तुलना में वे कुछ नहीं। हमारे राष्ट्रकवि रवीन्द्रनाथ कहते हैं—'पूरब पश्चिम आशे तब सिंहासन पाशे। प्रेमहार हय गाथा।' हे भगवान तेरे सिंहासन के पास पूरब नहीं, पश्चिम नहीं दोनों एक हैं। जब तक भेद रहेगा तब तक खेद रहेगा। इस अविनाशी अखंड तत्त्व को जानेंगे तो सारा खेद नष्ट हो जायगा। सारा जगत् एक ही दिखाई देगा। भगवान अर्जुन को कहते हैं देखो यह अव्यक्त निर्गुण-निराकार तत्त्व की दृष्टि से तुम्हारा मोह जायगा ही, शोक जायगा ही—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिवेदना॥

यह आत्मा अव्यक्त है और अखंड है। वहाँ कापरिवेदना ? तब शोक क्या ? तत्र कः मोहः कः शोकः एकत्वं अनुपश्यतः।

एकत्व की आनन्द की ब्रह्मविद्या

व्यक्त से ज्ञान नहीं होता तब अव्यक्त का सहारा लेना पड़ता है। अव्यक्त परतत्व है। उससे पर कोई नहीं। कवि कहता है—

अन्तर की अँखियाँ खोलो जी, अन्तर की अँखियाँ ख़ोलो जी।

बाह्य दृष्टि भेद को छोड़िये। कवि आगे कहता है—

अन्तर की अँखियाँ खोलो जी अन्तर की अँखियाँ खोलो जी
चिदानन्द का दर्शन करके प्रेम मगन हो डोलो जी—
अन्तर की अँखियाँ खोलो जी॥

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत। अव्यक्त निधनान्येव तत्र का परिवेदना॥ अव्यक्त तत्त्व को देखो। यह व्यापक है। उसमें भेद नहीं है।

अन्तर की अँखियाँ खोलो जी अन्तर की अँखियाँ खोलो जी
चिदानन्द का दर्शन करके प्रेम मगन हो डोलो जी—
अन्तर की अँखियाँ खोलो जी ॥
बैठो साधुसन्त की संगत मधुरी वाणी बोलो जी—
अन्तर की अँखियाँ खोलो जी ॥
मानपुरी कहे चारखान में आप ही आप अकेलो जी—
अन्तर की अँखियाँ खोलो जी ॥

तत्र कः मोहः. कः शोकः एकत्वं अनुपश्यतः । मानपुरी कहे चारखान में आप ही आप अकेलो जी । यह आत्मतत्त्व अर्जुन को समझाया और पूछा अर्जुन अब तो अच्छी तरह से समझा न ? सब में एक ही तत्त्व है—

पुण्य में पाप में, शाह में चोर में काक में कीर में हंस में मोर में ।
सुख ते दुख ते द्वन्द्व ते है परे सुन्दरे सुन्दरे सुन्दरे सुन्दरे ॥

यह दृष्टि यदि खुल गई तो बहुत बड़ा काम होगा। तत्र का परिवेदना—यह तो निगेटिव भाषा है, निषेधक भाषा है । क्योंकि अर्जुन शोक में था । जब प्रान्तभेद, लिंगभेद, जातिभेद, राष्ट्रभेद जाता है तो बहु बड़ा काम होता है । कई नवजवान लोग कहते हैं ये बूढ़े लोग कुछ काम के नहीं । हम आगे जाना चाहते हैं तो वे हमको पीछे खींचते हैं । बूढ़े लोग कहते हैं इन जवान लोगों को कुछ अनुभव नहीं । इस तरह नवजवान और बूढ़े में झगड़ा होता है । नवजवान लोग तो कहते हैं—वृद्धास्ते न विचारणीय पुरुषाः इस तरह लड़ते हैं, झगड़ते हैं । उससे खेद उत्पन्न होता है । शोक उत्पन्न होता है । सब में एक ही तत्त्व है । यह दृष्टि जब आयगी तब—

पुण्य में पाप में साहु में चोर में काक में कीर में हंस में मोर में ।
सुख ते दुःख ते द्वन्द्व ते है परे सुन्दरे सुन्दरे सुन्दरे सुन्दरे ।।

सामंजस्य की एकता जब आती है तब—तत्र का परिवेदना । यह निगेटिभ भाषा अर्जुन के संदर्भ में भगवान ने कही है । वास्तव में भगवान को कहना है कि यह दृष्टि आती है तब आनन्द ही आनन्द होता है । आनन्दात् हि एव खलु इमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दे प्रयन्त्य अभिसं विशन्ति । सब आनन्द ही आनन्द है । दूसरी बात ही नहीं । इस तरह की आत्मविद्या भगवान ने अर्जुन को सिखाई । भगवान सामने खड़े हैं तब भी अर्जुन का मोह नहीं जाता, इसलिये भगवान नें ब्रह्मविद्या बताई ।

कर्त्तव्य का योगशास्त्र

आगे भगवान कहते हैं, हे अर्जुन तुम अपने कर्त्तव्य की ओर, धर्म की ओर देखो । स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि । धर्म्याद्धियुद्धाच्छ्रेयो-ऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ।। स्वधर्म का पालन स्वर्ग का द्वार प्राप्त करा देनेवाला है । यह सामान्य बात नहीं है । भगवान ने अर्जुन को ब्रह्मविद्या समझाई और व्यापक दृष्टि देकर शोक दूर करके तैयार होने को कहा—भगवान ने ब्रह्मविद्या के साथ-साथ योग शास्त्र भी जोड़ा । गीता के हरेक अध्याय के आखिर में—इति श्रीमद्भगवत् गीतासूपनिषदत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे अमुक योगो नाम अमुको ध्याय:—ऐसा आता है । यह अध्याय की परिसमाप्तिसूचक संकल्प है । इसमें ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र दोनो आते हैं, भगवान ने अर्जुन को दोनो बताये हैं ।

मह द्वितीय अध्याय है, लेकिन अद्वितीय है। इस में ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र का विवरण किया गया है। आत्मविद्या कैसे प्रकट हो यह बताया गया है। कर्मयोग योगशास्त्र के बिना हम आगे नहीं जा सकते। साधन भी योगशास्त्र में हो सकता है। इस तरह दूसरे अध्याय सांख्ययोग और योगशास्त्र का उपदेश भगवान ने अर्जुन को दिया। आगे भगवान कहते हैं ठीक है ब्रह्मविद्या यानी सांख्यशास्त्र तुमको बताया। अब कर्मयोग के बारे में कहेंगे और—कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ इस तरह की कर्मयोग की चतुःसूत्री भगवास ने अर्जुन को बताई।

स्थितप्रज्ञ प्रश्न : स्थितप्रज्ञ लोकविरुद्ध गंभीर

अर्जुन आगे पूछता है—हे भगवान, आपने मुझे ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र बताया। लेकिन कोई ऐसा आदमी है क्या कि जिसमें इन दोनो का सम्मेल हो। वही स्थितप्रज्ञ का सवाल आता है। वही योगशास्त्र और ब्रह्मविद्या दोनो का मेल जिसमें हुआ है—उस स्थितप्रज्ञ मूर्ति का सवाल आता है। अर्जुन भगवान को पूछता है—हे भगवन, स्थितप्रज्ञ कैसा चलता है, कैसा फिरता है, कैसा बोलता है, कैसा बैठता है? स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव। स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत् किम्॥ जहाँ साकार सगुण भगवान खड़े हैं वहाँ अर्जुन प्रश्न पूछ रहा है यह विचित्र बात है। भगवान सामने खड़े हैं तो भी अर्जुन पूछता है कि ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र का जिसमें सम्मिश्रण हुआ हो वैसी स्थितप्रज्ञ मूर्ति कौन

है। सामने ही भगवान की स्थितप्रज्ञ मूर्ति खड़ी है तव भी अर्जुन पूछ रहा है। लेकिन भगवान ने ऐसा जवाव नहीं दिया कि मैं ही सामने खड़ा हूँ। तुम मुझे देखते नहीं क्या ? ऐसा भगवान ने कहा नहीं। उन्होंने दूसरी तरह से वहुत ही अच्छा जवाब दिया, वहुत ही सुन्दर जवाव देकर भारतीय जीवन का आदर्श वताया। शंकराचार्य ने भाष्य में स्थितप्रज्ञ को आदर्श माना है। महात्मा गांधी को भी यह आदर्श वहुत प्रिय था। यदि भगवान ने कहा होता कि मैं ही तो उसका आदर्श हूँ तो इतना सुन्दर शब्दशिल्प हमारे सामने नहीं आता। लेकिन स्थितप्रज्ञ के श्लोकों में ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र का सुन्दर सम्मिश्रण भगवान ने वताया है। कोई देहातवाला आदमी यदि राजमहल के राजपुरुष के पास जाता है तो राजपुरुष को देखकर उसे आश्चर्य होता है। यदि कोई राजपुरुष देहात में जाता है तो देहातवाले आदमी को उसके वारे में जिज्ञासा होती है। राजपुरुष कैसा होता है यह वह देखता रहता है। वैसी ही यह जिज्ञासा है। कहाँ स्थितप्रज्ञ और कहाँ राजपुरुष ! दोनो में विल्कुल समानता नहीं। दोनो एक दूसरे से उलटे है। या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

स्थितप्रज्ञ विल्कुल असामान्य होता है यह उसकी पहचान है। समुद्र से उसकी तुलना की गई है। यथा—

नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नाम रूपे विहाय तथा विद्वान्
नामरूपात् विमुक्तः परात् परं पुरुषं उपैतिदिव्यम् ॥

उपनिषद् में भी विद्वान को समुद्र की उपमा दी गई है। गीता में

भी कहा है—तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।। समुद्र इव गांभीर्यं स्थैर्ये च हिमालयाः—ऐसा कहा है। स्थितप्रज्ञ समुद्र जैसा गंभीर रहता है।

स्थितप्रज्ञता की सहजावस्था

उसकी ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र सब सहज होता है। कृत्रिम नहीं। उसका चलना, फिरना, देखना, बातें करना, सोना सहज ही ब्रह्मविद्यामय होता है। स्थितप्रज्ञ के सिलसिले में ही मैं आपको एक कहानी कहूँगा। हम छोटे थे तब चित्रकला सीखने के लिए जाते थे। हमारे गुरु चित्रकला में खूब प्रवीण थे। वे हमको अपने बचपन की एक बात बताते थे। बड़ौदा में राजा के यहाँ रविवर्मा जो हिन्दुस्तान के सबसे अच्छे चित्रकार थे, आये थे। हम स्थितप्रज्ञ के सिलसिले में यह बात कह रहे हैं। बड़ौदा के महाराज ने राजा रविवर्मा को बुलाया था—अच्छे चित्र निकालने के लिए। राजा रविवर्मा केरल के अच्छे चित्रकार थे। उन्होंने अपना पहला चित्र 'शकुन्तलापत्र लेखन' नाम का छत्तीस रंगों का निकाला था। इंगलैंड के किसी आदमी को यह चित्र बहुत अच्छा लगा तो उसने खरीदा। तब से राजा रविवर्मा हमारे यहाँ मशहूर हुए। यह तो हमारे देश का रवैया ही है कि यूरोप के लोग, पाश्चात्य लोग किसी बात की प्रशंसा करते हैं तभी हम जगते हैं। जैसे कि गुण की कद्र करने का गुण उनके पास ही हो। तो बड़ौदा के महाराज ने उनको बुलाया। रविवर्मा वहाँ आये। हमारे गुरुजी को देखना था कि वे कैसे चित्र निकालते हैं। बात तो कठिन थी—इतने छोटे बच्चे को रविवर्मा के पास महाराजा की परवानगी लेकर

कौन जाने देगा। शहर में एक बड़े आदमी थे जो हमारे गुरुजी को पहचानते थे। गुरुजी ने जाकर उस आदमी को कहा—मुझे राजा रविवर्मा के पास चित्र सीखने की मंशा है। उस बड़े आदमी ने कहा—यह तो असम्भव होगा तब भी देखेंगे। एकबार उस बड़े आदमी की महाराजा से भेंट हुई और उन्होंने महाराजा को कहा—हमारे पास ऐसा एक लड़का है जो राजा रविवर्मा की कला देखना चाहता है। वहाँ के महाराजा भी गुणग्राही थे जैसे यहाँ के महाराजा थे। उन्होंने सोचा यदि अपने राज्य का विद्यार्थी रविवर्मा की चित्रकला देखना चाहता है तो अच्छा ही है। वह चित्रकला सीखेगा और हमारे राज्य का नाम करेगा। उन्होंने राजा रविवर्मा को कहा—हमारे पास एक विद्यार्थी है जो आपके चित्र देखना चाहता है। आप चित्र कैसे निकालते हैं यह देखना चाहता है और सीखना चाहता है। हाला कि महाराजा उस लड़के को पहचानते नहीं थे तब भी उन्होंने ऐसी बातें रविवर्मा से की। रविवर्मा को अच्छा ही लगा। क्योंकि वे किसी के सामने चित्र नहीं निकालते थे। लेकिन जब महाराजा ने कहा है तो ना भी कैसे कहा जाय? उन्होंने पूछा—अच्छा है वह लड़का कब आयगा? महाराजा ने कहा—जब आप कहें तब। दिखाना तो आपको ही है। रोज एक घंटा वह आयगा। आपके चित्र देखेगा, आपको कोई हर्ज तो नहीं न? आखिर समय निश्चित हुआ और विद्यार्थी हर रोज एक घंटा जाने लगा। रविवर्मा के पास कई युरोपियन विद्यार्थी रहते थे देखते थे और यह विद्यार्थी भी जाया करता था। हर रोज जाकर, उसके लिए एक कुर्सी रखी थी, उसपर वह बैठता था। राजा

रविवर्मा तो आँखें मूँदकर ध्यानस्थ रहते थे। कोई भी इस विद्यार्थी को कुछ पूछता नहीं था। वह नियत समय पर जाता था और नियत समय पर वापस आता था। उनके युरोपियम विद्यार्थी भी कुछ बोलते नहीं थे। राजा रविवर्मा भी कुछ पूछते नहीं थे। एक महीने का वादा किया था। एक महीना पूर्ण होने आया। आखिरी दिन था, लेकिन चित्रकला कहाँ सीखी थी। विद्यार्थी तो सोचा करता था—कैसे क्या किया जाय। आखिरी दिन भी वह रविवर्मा के यहाँ गया और अपनी कुर्सी पर बैठ गया। रविवर्मा ने आकर उसके कँधे पर हाथ रखे और पूछा बेटा, तुमने चित्र देखे न। अब हाँ भी कैसे कही जाय और ना भी कैसे कही जाय। विद्यार्थी की आँख में आँसू आ गये। विद्यार्थी बेचारा क्या जवाब दे। रविवर्मा पूछते हैं बेटा, तुमको ऐसा लगा न कि हम हमारी विद्या छिपाना चाहते हैं ? विद्यार्थी बेचारा क्या जवाब दे ? अब भी वह मौन रहा। उतने में रविवर्मा ने एक केनवास का कपड़ा लिया और सामने आइल पेंटिंग के जितने रंग थे उन सब रंगों को इस केनवास पर फेंकने के लिए बच्चे को कहा। बच्चे ने कहा—यह मेरे से नहीं बनता। इतना केनवास और इतना रंग बिगाड़ना मुझ से नहीं होगा। राजा रविवर्मा ने कहा—बच्चा, बेटा—तुम करो हम तुमको आज्ञा देते हैं। विद्यार्थी ने कहा—हम इन रंगों को बिगाड़ नहीं सकते। कैसे बिगाड़ेंगे इन रंगों को ? आखिर राजा रविवर्मा ने अपने इटालियन विद्यार्थियों से कहा—मैं जैसा कहता हूँ वैसा तुम करो। उन्होंने केनवास पर कलर्स डालने के लिए कहा और विद्यार्थियों ने वैसा किया। तब राजा रविवर्मा ने अपने हाथ में ब्रस

लिया और उसमें से एक सुन्दर और अद्भुत चित्र पाँच दस मिनिट में निकाला। उस विद्यार्थी को यह सब देखर आश्चर्य हुआ। राजा रविवर्मा ने कहा—"बेटा, हमारी चित्रकला ऐसी ही रहती है। हम पहले उसका ध्यान करते हैं, जो निकालना है उसको मन में अंकित करते हैं। उसके बाद ही हम निकालते हैं। मन में सोचे बिना काम करने बैठ जाना यह हजाम का काम है। मनपट पर अंकित किये बिना चित्र निकालना यह प्राथमिक चित्रकार का काम है। हमने तुमको ठगा नहीं। हमको यदि हमारी विद्या छिपानी होती तो तुमको आने ही नहीं देते।" चित्रकला में इतनी सहजता आनी चाहिए। स्थितप्रज्ञ के वर्तन में भी ऐसी ही सहजता आती है। वह कैसा भी बोले, कैसा भी चले, कैसा भी फिरे उससे जगत का कल्याण ही होता है, लोकसंग्रह ही होता है। तो ब्रह्मविद्या का जिसने ध्यान किया, कर्मयोग जिसके अंग प्रत्यंग में भर गया, उस आदमी के चलने में, बैठने में, सोने में, सोचने में कृत्रिमता नहीं होती। वह जो कुछ करता है वह सत्यं शिवं सुन्दरं ही होता है। लेकिन स्थितप्रज्ञ बनना यह सामान्य बात नहीं। ब्रह्मविद्या का और योगशास्त्र का अन्तःकरण में परिपाक होता है। तब स्थितप्रज्ञ बनता है। इस तरह द्वितीय अध्याय में स्थितप्रज्ञ, ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र का दर्शन भगवान ने कराया।

अर्जुन का मुक्तभाव से प्रश्न

तीसरे अध्याय में अर्जुन प्रश्न पूछता है—हे भगवन, यदि बुद्धि को आप श्रेष्ठता देते हैं तो मुझे घोर कर्म में क्यों डालते हैं। ज्यायसी चेत्-कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन। तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥

दूसरे अध्याय में भगवान ने कहा था दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय। इससे ही अर्जुन को प्रश्न उठता है कि यदि बुद्धि श्रेष्ठ है तो मुझे कर्म में क्यों डाल रहे हो—व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धि मोहयसीव मे। तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम॥ अर्जुन साफ-साफ भगवान को पूछ रहा है—सख्य भक्ति से पूछ रहा है—भगवान की चरित्र लीला इसमें दिखाई देती है। भगवान जब गोकुल में थे तब गोपाल और भगवान अपने यहाँ से रोटी-मक्खन इत्यादि ला करके इकठ्ठा करके खाते थे। इसमें भगवान की सामंजस्य की लीला है। यहाँ बुद्धियोग और कर्मयोग का सम्मिश्रण भगवान ने कहा है। अर्जुन तो राजपुरुष है। उसको ऐसा सम्मिश्रण नहीं चलता। उसको एनेलसिस चाहिये। इसलिये वह कहता है—व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धि मोहयसीव मे। मुझे, मोह में क्यों डाल रहे हो? पहले से ही मैं मोह में तो हूँ ही और तत्त्व ज्ञान से आप ज्यादा हमें मोह में डालते हैं।

कर्मयोग के बारे में उदाहरण सहित उत्तर

भगवान कहते हैं—ठीक है। समत्व बुद्धि कर्म से श्रेष्ठ है, लेकिन कर्म के बिना समत्वबुद्धि नहीं आ सकती। रोटी गेहूँ से श्रेष्ठ ज़रूर है लेकिन गेहूँ बिना रोटी कहाँ से आयगी। गेहूँ को पीसना पड़ता है, मलना पड़ता है, बेलना पड़ता है तब रोटी होती है। ऐसे ही कर्मयोग का शास्त्र तीसरे अध्याय में भगवान ने बताया है और कहते हैं शरीर-यात्रा के लिए भी कर्म जरूरी है। शरीरयात्रापि च ते न प्रद्धियेदकमर्णः। उपनिषद में भी कहा है—ब्रह्मज्ञानी कर्म करता है तभी श्रेष्ठ होता है। कर्मयोग के बिना ब्रह्म-

विद्या प्राप्त नहीं होती। क्रियावान् एषः—ब्रह्मविदां वरिष्ठः और भगवान खुद का उदाहरण देते हैं। कहते हैं न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन। नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्तं एव च कर्मणि॥ इसका मतलब तीनो लोक में भगवान को कुछ कर्त्तव्य नहीं, भगवान को वैयक्तिक कर्त्तव्य नहीं। लेकिन भगवान तो व्यक्ति नहीं। भगवान का रूप वैश्विक रूप है। उनको वैश्विक कर्म रहता है। न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं—वैयक्तिक कर्म उनको नहीं। खुद का उदाहरण दिया, उसके पहले भगवान ने जनक राजा का उदाहरण दिया। यह मिथिला प्रदेश है, राजा जनक का प्रदेश है। उनका उदाहरण देते हुए भगवान ने कहा—कर्मण्यैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुं मर्हसि॥ मिथिला का महाभाग्य है कि भगवान के मुँह से राजर्षि जनक का उदाहरण पहले निकलता है बाद में खुद का। यह मिथिला नगरी का सम्मान है।

क्रियाशून्य तत्वज्ञान निरर्थक : कहानी

कर्म के बगैर ब्रह्मविद्या सिद्ध होगी नहीं। यदि हम अकर्मण्य बनेंगे तो ब्रह्मविद्या का उपयोग क्या ? इस सिलसिले में हमने एक कहानी सुनी है जो मैं आपके सामने निवेदन करूँगा। जैसे यह उपक्रम चल रहा है वैसे किसी छोटे से शहर में चातुर्मास में कुछ उपक्रम का आयोजन किया गया था। भरत खंड में ऐसे आयोजन चलते रहते हैं और अभी भी चालू है। उस आयोजन में एक सेठ महात्मा जी का प्रवचन सुनने के लिए जाया करता था। वह सेठ नियमितता से जाया करता था और

एकाग्रता से सुनता था। एक दिन उस सेठ को आने में जरा देरी हो गई। सज्जन महात्मा ने कहा—ये सेठ तो नियमितता से आते थे, लेकिन आज क्यों नहीं आये ? आजकल हमारे जीवन में नियमितता नहीं है। हमको कहा जाता है कि साढ़े छः बजे आना है तो हम ऐसा ही समझते हैं कि इसका मतलब सात बजे आना है। यह हमारा इंडियन टाईम माने—अव्यवस्था का टाईम। हाँ, तो वे सज्जन एकाग्रता से सुनते थे। नियमितता से आते थे। इसलिये महात्मा जी पाँच मिनट उनके लिए रुके। उतने में सेठ जी आ गये। महात्मा जी ने पूछा आपको देरी क्यों हुई। सेठ जी ने कहा—आप सवाल मत पूछिये। प्रवचन करना शुरू कीजिये। महात्मा जी ने कहा—नहीं ऐसा नहीं हो सकता। क्या वात है ? सेठ जी ने कहा—खानगी कारण है, प्राइवेट कारण है हम आपको कह नहीं सकते। साधु महात्मा जी ने कहा—देखो हमारे यहाँ प्राइवेट सेक्टर और पब्लिक सेक्टर ऐसा अलग-अलग नहीं रहता। हमको वात वताइये तभी हम प्रवचन शुरू करेंगे। वहुत आग्रह के वाद सेठ जी ने कहा---हम आ रहे थे तो हमारा इकलौता लड़का है, उसने भी जिद्द पकड़ी आप हर रोज जाते हैं, हम आज आपके साथ जायेंगे। हमको भी सुनना है। उसकी जिद्द में हमको देरी हो गई। साधु महात्मा जी ने कहा—इसमें खानगी क्या है ? अच्छी ही वात है। लेकिन आप उसको लाये क्यों नहीं ? सेठ जी ने कहा—अव ज्यादा मत पूछिये। हम ज्यादा कहना नहीं चाहते। महात्मा जी ने आग्रह रखा कि कहना ही पड़ेगा। आखिर सेठ जी को कहना पड़ा। आप वहुत अच्छे ढंग से प्रवचन करते हैं। हम पर उसका वहुत परिणाम

होता है। हमारा लड़का तो अभी कच्ची अवस्था में है और उसपर आपके प्रवचन का परिणाम होगा तो कैसे चलेगा ? वह तो हमारा इकलौता लड़का है। हमारी दूकान में हमको काला बाजार भी करना पड़ता है। यदि आपके प्रवचन का हमारे लड़के पर परिणाम होगा तो वह दूकान कैसे चला सकेगा ? महात्मा जी ने पूछा—आप पर हमारी बातों का परिणाम होता है तो आप कैसे दूकान चलाते हैं ? सेठ जी ने कहा—जबतक हम यहाँ हैं आपकी बातें सुनने में अच्छी लगती हैं, सुनते रहते हैं, लेकिन जैसे यहाँ से कीड़े (रात के समय के कारण लाइट के कीड़े श्रोता पर आते थे) झटक कर उठते हैं वैसे ही आपका उपदेश झटक करके हम चले जाते हैं और हमारा व्यापार चलता रहता है। ब्रह्मज्ञान सुनना और करना कुछ नहीं यह ठीक नहीं इसलिये कर्मयोग आवश्यक है ऐसा भगवान कहते हैं। भारत में तत्त्वज्ञान कहनेवाले बहुत से लोग हैं। लेकिन साकारसक्रिय ब्रह्मविद्या भारत में पनपी नहीं।

भारत में क्रियाशून्यता का ऐटम बम

हमलोग कहते हैं कि ऐटम बम बन रहा है इसका हमको बहुत खतरा है। तो मैं कहता हूँ, ऐटम बम का जरा भी खतरा नहीं। जो खतरा है वह उस बम का जो हम सदियों से बना रहे हैं। ऐटम बम रजोगुण का द्योतक है लेकिन तमोगुण का ऐटम बम हम सदियों से बना रहे हैं। भारत में वेदान्त तत्त्वज्ञान की बातें खूब चली लेकिन क्रिया-

शून्यता रही। उसके अनुरूप यदि क्रिया रहेगी तो ब्रह्मविद्या साकार सक्रिय होगी और सब जगह सुख होगा। यही प्रार्थना करके हम समाप्त करते हैं।

सर्वे अत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात्॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

★

अध्याय ४, ५

सर्वोदय गीता-यज्ञ के अवसर पर महर्षि शिवाजी भावे का प्रवचन दिनांक:–२१–६–६३–स्थान—दरभंगा ।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुत:स्तुन्वन्ति दिव्यै: स्तवै–
र्वेदै: सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगा: ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदु: सुरासुरगणा: देवाय तस्मै नम: ॥

अध्याय २, ३ का समालोचन और पापमूल विनाश

भगवान ने अर्जुन को दूसरे अध्याय में ब्रह्मविद्या और योग शास्त्र का उपदेश दिया । और अर्जुन ने ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र जिसमें परिपूर्ण हुए हैं ऐसे पुरुष का लक्षण भगवान को पूछा । भगवान स्थितप्रज्ञ के भी स्थितप्रज्ञ थे तब भी उन्होंने स्थितप्रज्ञ के लक्षण कहे । स्थितप्रज्ञ का दर्शन कराया । यह अर्जुन का भाग्य था कि उसके सामने स्थितप्रज्ञ के भी स्थितप्रज्ञ भगवान स्थितप्रज्ञ के बारे में बोल रहे हैं । तीसरे अध्याय में अर्जुन ने कर्मयोग श्रेष्ठ है या समत्व बुद्धि श्रेष्ठ है—ऐसा प्रश्न भगवान को पूछा । भगवान ने दोनो का समन्वय करके बताया है । बगैर कर्म

आदमी रह नहीं सकता। वगैर कर्म ब्रह्मविद्या की प्राप्ति नहीं होती। तीसरे अध्याय के अन्त में अर्जुन भगवान को पूछता है—हे भगवान, आदमी कर्मयोग से भी भ्रष्ट होता है तो इसका कारण क्या है ?

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः। अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ इस तरह का प्रश्न भगवान को अर्जुन ने पूछा। इसका सार ध्यान में लेकर भगवान जवाब देते हैं—काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिहवैरिणम् ॥ काम और क्रोध यही पाप का मूल है। आदमी इसी राग-द्वेष के कारण कर्मयोग से भ्रष्ट होता है। यदि राग-द्वेष चले गये तो ब्राह्मी स्थिति की प्राप्ति होती है। तृतीय अध्याय तक ब्रह्मविद्या योगशास्त्र और कर्मयोग बतलाने की बात आई। अब ज्ञान पूरा हुआ।

गुरुपरंपरा

ज्ञान कार्य जब पूर्ण होता है तो गुरुपरंपरा कही जाती है और चौथे अध्याय में वही गुरुपरंपरा भगवान ने कही है। इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्। विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः। स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः। भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यंह्येतदुत्तमम् ॥ इन तीन श्लोकों में भगवान ने अर्जुन को ज्ञान की परंपरा कही है। इसमें ज्ञान का अधिकारी सूचित होता है। परंपरा दो प्रकार की रहती है। एक है ज्ञान परंपरा और दूसरी है कुल परंपरा। कुल

परंपरा शरीर से चलती है। वह ज्यादा टिकती है। क्योंकि उसमें कुछ विशेषता नहीं। वह स्थूल परंपरा है। ज्ञान परंपरा सूक्ष्म परंपरा है। इसलिये उसको टिकानी पड़ती है। उसके लिए प्रयत्न करना पड़ता है। इसलिये भगवान ने कहा—मैंने योग कहा था लेकिन बहुत काल से वह नष्ट हो गया यह सूक्ष्म परंपरा थी इसलिये टिकी नहीं। हमारे यहाँ जगह-जगह बड़े-बड़े आश्रम हैं। वह ज्ञान परंपरा को सूचित करते हैं। यदि आश्रम का विकास नहीं होगा तो संस्कृति बढ़ेगी नहीं, विकृति आयगी।

ज्ञानाधिकार द्विविध

इन तीन श्लोकों में भगवान ने सूचित किया है कि ज्ञान का अधिकारी कौन है। इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहम्। हमने यह योग पहले विवस्वान को कहा। विवस्वान् माने सूर्य। संस्कृति में विवस माने प्रकाश होता है। जो प्रकाशमय है, बुद्धिवान है उसको पहले ज्ञान कहा गया। प्रकाश माने ज्ञान, बोध। बोध प्रकाश के लिए जिसके मन में गुंजायस रहती है वह ज्ञान का अधिकारी है। भगवान आगे कहते हैं कि सूर्य ने यह ज्ञान मनु को दिया। विवस्वन्मनवे प्राह—सूर्य ने मनु को कहा—और भगवान ने सूर्य को कहा—मनु का मतलब है—जो मननशील है वह। जिसके पास मनन करने की शक्ति है वह ज्ञान का अधिकारी है। आगे भगवान कहते हैं—मनु ने यह योग इक्ष्वाकु को कहा—मनु इक्ष्वाकवेब्रवीत्। इक्षु माने—गन्ना। जिसमें भाव रहता है, जिसमें मधुरता

रहती है वह भी ज्ञान परंपरा सुनने का अधिकारी है। वह एक तो जिसके पास प्रकाश रहता है—माने जो बोध को ठीक से ग्रहण कर सकता है वह ज्ञान का अधिकारी है और दूसरा जिसमें भावना है, मधुरता है वह ज्ञान परंपरा का अधिकारी है। आगे भगवान कहते हैं—वही योग मैं तुझे कह रहा हूँ। स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः। भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥ हे अर्जुन, तू मेरा भक्त है और सखा है इसलिये वही योग मैं तुमको कह रहा हूँ। ऐसा भगवान ने अर्जुन को कहा। इसका मतलब यह कि अर्जुन और इक्ष्वाकु दोनो भक्ति-भाव के कारण ज्ञान के अधिकारी थे और मनु—सूर्य अपनी बुद्धिशक्ति के कारण ज्ञान के अधिकारी थे।

भगवान का अवतार रहस्य

अर्जुन आगे भगवान को पूछता है—आपका जन्म तो अभी हुआ और सूर्य का जन्म तो कभी का है। आपने सूर्य को यह ज्ञान परंपरा कैसे बतलाई? अर्जुन को यह शंका नहीं आती तो हमारे सामने भगवान का अवतार रहस्य नहीं खुलता। अर्जुन ने प्रश्न पूछा और भगवान ने उत्साह में उसका जवाब दिया जिससे हमारे सामने अवतार रहस्य खुल गया। शंकराचार्य कहते हैं—अर्जुनं निमित्तीकृत्य आह भगवान वासुदेवः। अर्जुन को निमित्त करके भगवान वासुदेव बोल रहे हैं। भगवान अर्जुन को कहते हैं—तू ने यह प्रश्न पूछा है—मेरा जन्म तो अभी का है और सूर्य का कब का है यह बात निकाली ठीक ही हुआ। अब मैं तुमको कहता हूँ मेरा जन्म कैसे और कब होता है। ऐसा कहकर भगवान अपने

अवतार का प्रख्यात श्लोक कह रहे हैं—यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ! अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।। परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।। जब-जब धर्म की ग्लानि होती है अधर्म का उत्थान होता है तब-तब मैं जन्म लेता हूँ । इस तरह दो श्लोकों में भगवान ने अपना अवतार रहस्य खोल दिया है । साधुओं का परित्राण करने के लिए और दुष्टता का विनाश करने के लिए, सत्य की स्थापना करने के लिए और असत्य का विनाश करने के लिए, अहिंसा की स्थापना के लिए और हिंसा को नष्ट करने के लिए, दैवी सम्पत्ति के विकास के लिए और आसुरी सम्पत्ति के विनाश के लिए, सात्विकता के विकास के लिए और असात्विकता —तमोगुण–रजोगुण के विनाश के लिए मैं जन्म लेता हूँ । भगवान का अवतार तत्त्वरूप होता है । वे तत्त्वरूप अवतार धारण करते हैं और सूक्ष्म रूप भी धारण करते हैं ।

अवतार मूर्तिवर्णन

उनके स्वरूप के लिए बड़े-बड़े कवियों ने श्लोक रचे हैं—

रक्ताब्जच्छदीर्घनेत्रजलदश्यामांग नीलालक
पीनाजानुभुज प्रसन्नवदनश्री जन्म ले बालक ।
कम्बुग्रीव विशालवक्ष सुशीरा गंभीर नाभिहृद
सर्वस्तुत्यसुलक्षणालयतनु त्रैलोक्यमोदप्रद ।।

भगवान ने अवतार धारण किया तो उसके नेत्र कैसे हैं ? रक्तकमल जैसे, लाल कमल के सदृश उनके नेत्र दीर्घ हैं । रक्ताब्जच्छद दीर्घ नेत्र—

इसका मतलब यह कि भगवान की दृष्टि दीर्घ दृष्टि होती है। उनकी दृष्टि संकुचित नहीं हो सकती। वे दीर्घ देखते हैं और दीर्घं पश्यत मा ह्रस्वम्। यह ऋषिवचन उनकी दृष्टि में समाया रहता है। ऋषि का मतलब भी यही है। ऋषि माने जिसको दर्शन होता है वह। ऋषि का दर्शन टिकनेवाला होता है। इस तरह दृष्टि से, नेत्र से भगवान के वर्णन की शुरुआत होती है। कमल भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। चरणकमल, हस्तकमल, नेत्रकमल वगैरह भगवान के अंग प्रत्यंग को कमल की उपमा दी जाती है। भगवान जलधिशयन, जलजनयन हैं। कमल अलिप्तता का, पवित्रता का और सुन्दरता का प्रतीक है। भारतीय जीवन की संस्कृति का वह प्रतीक है। फिर आगे भगवान का वर्णन करते हैं—उनका शरीर कैसा है? कैसे रंग का है? तो कहते हैं—जलदश्यामांग। जगत में कई प्रकार के लोग रहते हैं। अमेरिका के लोग रेड इंडिन कहे जाते हैं। वे लोग लाल होते हैं। अफ्रिका के निग्रो लोग कोयले जैसे काले रहते हैं। चीन, जापान, कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा इन प्रदेशों के लोग पीले रंग के होते हैं। भगवान का रंग कैसा है—जलदश्यामांग—-वर्षा करनेवाला मेघ जैसा श्याम रंग भगवान का रहता है। श्याम रंग का मतलब है जितने रंग हो उतने रंगों का सामंजस्य। सप्तरंग कहते हैं। सात रंगों का सामंजस्य श्याम रंग में होता है। वह रंग सब कुछ है और कुछ भी नहीं। इस तरह समूचा जीवन वर्षाव भगवान के इस रंग से सूचित होता है। उसमें ऐक्य है, सामंजस्य है। वर्षाव द्वारा ऐक्य और सामंजस्य रहता है। भगवान का जन्म यह साधारण बात नहीं। रक्ताब्जच्छद दीर्घनेत्र जलदश्यामांग नीलालक पीनाजानुभुज—पीनाजानुभुज माने—भगवान में ठोस कर्म शक्ति भरी हुई है।

आजानवाहु भगवान को कहते ही हैं। जिस शक्ति का दीर्घकाल तक परिणाम रहता है–ऐसी ठोस कर्मशक्ति का सूचन पीनाजानुभुज इस शब्द से होता है। और आगे कहते हैं—प्रसन्नवदनश्री जन्म ले वालक। उनका वदन कैसा है ? अधर्म को, अप्रसन्नता को दूर करने के लिए प्रसन्नवदन होकर उन्होंने जन्म लिया है। रक्ताब्जच्छद दीर्घनेत्र जलदश्यामांग नीला-लक, पीनाजानुभुज प्रसन्नवदनश्री जन्म ले वालक। कम्बुग्रीव विशाल-वक्ष सुशीरा गंभीर नाभिहृद। सर्वस्तुत्यसुलक्षणालयतनु त्रैलोक्यमोदप्रद॥ उनका कंठ कम्बु शंख जैसा मधुर है। भगवान का सवकुछ ही मधुर रहता है। मधुराधिपते रखिलं मधुरं। कम्बुकंठ मधुरता का द्योतक है। अधर्म की कटुता वह दूर करनेवाला है। आगे वर्णन आता है विशाल-वक्ष—भगवान का वक्षस्थल विशाल है। स्वामी रामतीर्थ ने कहा है—

हर जान मेरी जान है हर एक दिल है दिल मेरा
हर एक दिल है दिल मेरा,
हाँ बुलबुलों गुलमुहरों महकी आँख में है तिल मेरा,
हिन्दु-मुसलमां पारसी सीख जैन इसाई यहुद,
हर एक सीने में धरकता एक सा है दिल मेरा।

स्वामी रामतीर्थं ने जो दिल की विशालता का वर्णन किया है वह भी भगवान का ही वर्णन है। अलग-अलग सीना दिखाई देता है, लेकिन उसमें एक ही राम है। अधर्म का विनाश और धर्म की स्थापना को ख्याल में लेकर भगवान का जन्म होता है। उनका दिल विशाल रहता है संकुचित नहीं। आजकल लोग मीटिंग करते हैं, योजना करते हैं, लेकिन उसमें दीर्घदृष्टि नहीं रहती। इसलिये योजना टिकती नहीं। ऊँचे और

गहन विचार हो तब सभा का, योजना का कुछ परिणाम होता है। हाला कि योजना करनेवाले लोग सद्बुद्धि से प्रेरित होकर ही आयोजन करते हैं लेकिन वह सद्बुद्धि दुबली रहती है। उसमें बल नहीं। इसलिये उसमें सत्य प्रकट नहीं होता। जो बलवान सद्बुद्धि रहती है उसमें सत्य प्रकट होता है, सुन्दरता प्रकट होती है। इसलिए भगवान का वर्णन किया है सुशीरा—यह शोभनीय शिर-वर्णन है। कम्बुग्रीव, विशालवक्ष, सुशीरा गंभीर नाभिहृद सर्वस्तुत्य सुलक्षणालयतनु त्रैलोक्यमोदप्रद। भगवान के लक्षण कौन-कौन से हैं। ज्योतिष शास्त्र में बत्तीस लक्षण बताये हैं। लेकिन ज्योतिष शास्त्र के सारे लक्षण भगवान के लक्षण के सामने फीके पड़ते हैं।

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

भगवान प्रकाश का प्रकाश, चन्द्र का चन्द्र और सूर्य का सूर्य है। हमारी शब्द शक्ति भगवान का वर्णन करने में कैसे शक्तिमान हो सकती है?

गीता की कुंजी

इस तरह भगवान ने अवतार और दिव्य जन्म-कर्म की बात कही। चौथे अध्याय में भगवान ने अपनी अवतार मीमांसा बताई है। भगवान के अवतार में, भगवान के कार्य में यदि सहायता देनी है तो वह कैसे देनी चाहिए? ऐसे तो सब काम भगवान ही करते हैं लेकिन हमको भी वे सहकार्य का पाठ सिखाते हैं। भगवान ने गोवर्द्धन उठाया, भगवान के

बल से ही गोवर्द्धन उठा, लेकिन सबकी अँगुलियाँ लगीं तब वह गोवर्द्धन पर्वत उठा। सहकार्य का पाठ सिखाने के लिए एक सुन्दर श्लोक भगवान आगे दे रहे हैं। विनोवा जी ने वताया कि यह गीता की कुंजी है। टीकाकार भी इस श्लोक के तरह तरह के अर्थ करते रहते हैं।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः। अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥ यदि भगवान के अवतार कार्य में हम शामिल होते हैं तो यह हमारा भाग्य है। इसके लिए कर्म क्या है, विकर्म क्या है, अकर्म क्या है वह जानना चाहिये।

निष्काम कर्म अनंत फल-दायक : कहानी

द्वितीय अध्याय में भगवान ने कर्मयोग के बारे में कहा—लेकिन उसमें पूरा रहस्य खोला नहीं। अब भगवान कहते हैं कर्मयोग, कर्म और निष्काम कर्म को ठीक तरह से जानना चाहिए। वह कैसे ? कई लोग ऐसा समझते हैं कि निष्काम कर्म माने निष्फल कर्म। लेकिन वास्तव में वैसा नहीं है। निष्काम कर्म माने अनन्त फल देनेवाला कर्म। कर्म के तत्त्व को जानने के लिए भगवान कहते हैं। मुझे दृष्टान्त याद आ रहा है। वेदान्त और ज्ञान में दृष्टान्त से ही बातें स्पष्ट होती है। एक श्रीमान आदमी था। उसने दो मजदूर को अपने यहाँ काम करने के लिए बुलाये। मजदूरों को कहा—देखो काम बहुत है। काम में चोरी नहीं करना। आजकल तो मजदूर काम में चोरी करते हैं और मालिक दान में चोरी करता है। दोनो चोर ही है तो

किसका पक्ष लिया जाय। कोई मजदूर पार्टी निकालता है तो कोई मालिकों की पार्टी निकालता है। लेकिन दोनो चोरों की ही पार्टी है। हाँ, तो उस मालिक ने नौकरों को कहा—देखो, काम के मुताबिक दाम देंगे, लेकिन काम में चोरी नहीं करना। मजदूरों ने कहा—सेठ साहब, आये हैं तो काम करने के लिए। काम में चोरी क्यों करेंगे ? दूसरे दिन सुबह दोनो मजदूर आये और मालिक ने कुँए से पानी खींचने का काम उनको दे दिया। विहार में तो ऐसा करते ही हैं। आदमी कुँए से पानी खींचकर खेत में पहुँचाते हैं। लेकिन यह पानी खेत में नहीं पहुँचाना था। एक टोकरी मालिक ने दी थी उसमें पानी डालना था। कुँआ काफी गहरा था। नौकर लोग पानी निकाल करके टोकरी में डालते रहे। दोपहर के १२ वज गये लेकिन अभी तक टोकरी भरी नहीं। ऊपर से ये लोग पानी डालते थे और नीचे से पानी वहता जाता था। नौकरों ने सोचा पानी चाहे टिके या न टिके हमको तो मजदूरी मिलेगी न ? तो काम करने में हमारा क्या विगड़ता है ? टोकरी में एक बुन्द भी नहीं टिकता था। क नौकर ने सोचा मालिक तो मूर्ख लगता है। कुछ भी फल नहीं मिलता, फिजुल ही मेहनत करवाता है। हम ऐसे मूर्ख क्यों वनें ? उसने कहा—मैं तो काम नहीं करूँगा। और वह काम आधा छोड़कर चला गया। दूसरे मजदूर ने सोचा—यदि अभी चले जायेंगे तो हमको मजदूरी नहीं मिलेगी। इससे तो अच्छा है कि आज दिनभर काम करते रहें। शाम का वक्त हुआ और मालिक वहाँ देखने के लिए आया। मालिक ने पूछा वह दूसरा नौकर कहाँ गया। नौकर ने जवाव दिया कि वह तो कहता था कि हम ऐसा निष्काम कर्म,

निष्फल कर्म करना नहीं चाहते। मालिक वापस लौटा यह मजदूर अपना काम करता रहा। थोड़ी देर में कुँए का पानी खतम हुआ। बाल्टी में—जिससे वह पानी खींचता था उस पात्र में—हीरे-मोती वगैरह कीमती पदार्थ आये। मालिक एक दो घंटे के बाद वापस आया। यह मजदूर अब बैठा हुआ था। इसलिये मालिक ने कहा—पानी क्यों नहीं खींचते। मजदूर ने कहा—मालिक साहब पानी ही नहीं हैं तो हम क्या खींचें। इस बाल्टी में दूसरा ही कुछ आया है। मालिक ने देखा तो उस बाल्टी में सोना, मोती. चांदी, हीरे वगैरह का खजाना था। मालिक ने सोचा इस बाल्टी में इतना सब पड़ा है तब भी यह नौकर लेकर भागता नहीं। उसने मजदूर को कहा—तू ही सच्चा मजदूर है। अब इस बाल्टी में जो कुछ आया है वह इनाम के तौर पर मैं तुमको देता हूँ। और कल भी तुम काम पर आना। जो कुछ मुनाफा होगा उसमें से आधा तुमको दूँगा। कहानी का मतलब यह है कि जो निष्काम कर्म करता है, वह निष्फल कर्म नहीं करता। फल को छोड़ने से अनन्त फल मिलता है। भगवान कहते हैं—कर्मणो ह्यपि वोद्धव्यं कर्म को जानना चाहिए। कर्म को जानना माने क्या? कर्म को जानना माने कर्म की खूबी को जानना।

विकर्म स्पष्टीकरण
कबीर भजन से

भगवान के अवतार-कार्य में यदि सहकार करना है तो कर्म को, अकर्म को और विकर्म को जानना होगा। विनोबा जी ने और विज्ञान

भिक्षु ने विकर्म का अर्थ विशेष कर्म ऐसा किया है। कर्म अनन्त फल देनेवाला होता है और उसमें विकर्म दाखिल हुआ तब तो पूछना ही क्या ? विकर्म सूक्ष्म है, भगवान के अवतार-कार्य में मदद के लायक है। कर्म को यदि दूध कहा जाय तो विकर्म को शक्कर कह सकते हैं। शक्कर सूक्ष्म है, दिखती नहीं। लेकिन उसका परिणाम दूध पर होता है। वैसे ही माला में सूत्र रहता है, सूत्र दिखता नहीं लेकिन उसके कारण ही माला वनती है। कर्म में सुसूत्रता के लिए विकर्म दाखिल होना चाहिए। कर्म में विकर्म की एक कहानी याद आती है। दो पक्ष थे। आमने सामने लड़ रहे थे। उसमें से एक पक्ष की जीत हुई और दूसरा पक्ष हार गया। जिस पक्ष की जीत हुई उनलोगों ने दूसरे पक्ष के वहुत से लोगों को कैदी बनाये। उसमें वाजे वजानेवाले भी थे। वाजे वजानेवालों ने कहा—हमारा क्या अपराध हुआ ? हम तो आपसे लड़े नहीं। हम तो सिर्फ रणवाद्य ही वजाते थे। हमको क्यों कैदी किये ? जीते हुए लोगों ने कहा—आप लड़े नहीं, लेकिन आपने ऐसे गीत गाये जिससे कि योद्धा को स्फुरण हुआ—तोप तलवार खोलो गोली वादि मार खोलो, खंडे दी धार खोलो कसी नैयो हारना—पावे साड़ी जान जावे तोप तलवार खोलो—ऐसे गाने आप गाते रहे जिससे कि योद्धे को लड़ने में ज्यादा स्फुरण हुआ। आपने प्रत्यक्ष विघात चाहे न भी किया हो तो भी क्या ? विकर्म का लक्षण यह ही है। विकर्म से कर्म में प्राण आते हैं, स्फूर्तता आती है। यह वड़ा कूट श्लोक है। विनोवा जी ने उसको साफ करके दिखाया है। श्लोक के सम्वन्ध में कबीर का एक भजन मुझे याद आ रहा है। जन भजन विना जैसो जल

जलज विना। कबीर कहते हैं—समूचा जनसमूह एक पानी का तालाव है। तालाव में कमल विना शोभा नहीं ग्राती, वह व्यर्थ रहता है, वैसे ही जनसमूह को कर्म कहा जाय तो भजन को, कमल को विकर्म कहा जाय। जनसमूह स्थूल है, तालाव भी स्थूल है ग्रौर कर्म भी स्थूल है। उसमें विकर्म लाना है तो भजन सूक्ष्म है, कमल भी सूक्ष्म है ग्रौर सुन्दर है वैसे विकर्म भी सूक्ष्म है ग्रौर सुन्दर है। वह शोभा निर्माण करता है। जन भजन विना जैसो जल जलज विना। ग्रागे कवीर कहते हैं—मन्दिर सूना एक दीप विना, दीप सूना एक तेल विना जैसो जल जलज विना—वहुत ही प्रख्यात यह भजन है। मन्दिर को कर्म माना जाय तो कर्म में प्रकाश लाने का कार्य दीप माने विकर्म करता है। कर्म में ज्ञान लाना है तो प्रकाश चाहिए। दीया कर्म हो तो उसमें स्नेह तेल रूपी विकर्म चाहिए। विकर्म कर्म में सुन्दरता, प्रकाश, ज्ञान लाता है।

मन्दिर सूना एक दीप विना दीप सूना एक तेल विना जैसो जल
जलज बिना।

पर्वत सूना एक वृक्ष विना वृक्ष सूना एक पर्ण विना जैसो जल
जलज विना।

ग्रगर पर्वत को कर्म कहते हैं, वह स्थूल है तो वृक्ष को विकर्म कहेंगे। वृक्ष के विना पर्वत की शोभा नहीं रहती। पर्वत की दृष्टि से वृक्ष सूक्ष्म है। वृक्ष सूना एक पर्ण विना। वृक्ष को स्थूल कर्म कहेंगे तो पत्ते के विना, पर्ण के बिना वृक्ष की शोभा नहीं रहेगी। इसलिये पर्ण को विकर्म कहना होगा। एक मजे की वात है यदि कोई सामान्य ग्रादमी वोलेगा कि सामने सूखा वृक्ष खड़ा है तो कहेगा—शुष्को वृक्षो

तिष्ठति अग्रे तो कवि कहता है—नीरस तरुविह विलसति अग्र । यहाँ सामने नीरस तरुवर विलस रहा है। यह कोई कवित्व नहीं लेकिन कवित्व का विनोद है। कवीर आगे कहते हैं। नगर सूना एक राज बिना राज सूना एक न्याय विना जैसो जल जलज बिना—कोई नगर है और उसमें व्यवस्था-शक्ति नहीं, राज्य-शक्ति नहीं तो नगर सूना रहता है। कर्म को यदि नगर कहा जाय तो व्यवस्था शक्ति को विकर्म कहना चाहिए। इस तरह से कर्म विकर्म का रहस्य प्रकट होता है। कर्म-शक्ति में यदि विकर्म नहीं होगा तो उसका रहस्य प्रकट नहीं होगा। आगे कवीर कहते हैं—

कहत कवीर सुनो भाई साधो जगत सूना एक राम विना जैसो जल जलज विना—कवीर कहते हैं सवको सुन लेना चाहिए—जगत सूना एक राम विना। जगत को कर्म कहा जाय और वैसा है ही। समूचा जगत कर्म ही है। तो जगत को कर्म कहते हैं तव राम को विकर्म कहना होगा। जगत में यदि राम-शक्ति न हो, रमणीयता न हो, विकर्म न हो तो क्या रहेगा? यहाँ रामायण की एक कहानी याद आती है। राम ने वानर सेना की सहायता से लंका पर विजय पाई और जब अयोध्या लौटने लगे तो वानरगण को बुलाकर वे कुछ न कुछ उपहार देने लगे। उन्होंने कहा—आपकी सेवा से मैं उऋण तो नहीं हो सकता लेकिन सवको कुछ न कुछ देने की मेरी इच्छा है। इसलिये दे रहा हूँ। सवको उन्होंने कुछ न कुछ दिया लेकिन हनुमान को कुछ भी नहीं दिया। सीता ये सब देख रही थी, उसको लगता था कि ऐसा क्यों हो रहा है? हनुमान को क्यों कुछ भी नहीं दिया गया? उनको लगा राम शायद हनुमान को देना भूल गये।

लेकिन सबके सामने थोड़े ही राम को कुछ कह सकते हैं। इसलिये सीता इसारे से हनुमान को बुलाया और अपने गले का मुक्ताहार निकाल करके उसको दिया। मुक्ताहार के दो अर्थ होते हैं। एक अर्थ तो है मोती का हार और दूसरा अर्थ है मुक्तपुरुष का जिसमें वर्णन आता है वह हार। हनुमान तो हार लेकर पेड़ पर गये और एक एक मोती निकाल करके देखने लगे। अन्दर कुछ दिखाई नहीं देता था तो एक-एक मोती फेंकने लगे। किसी ने सीता को आकर कहा—हनुमान तो पेड़ पर बैठकर ऐसे एक एक मोती को तोड़-फोड़ करके फेंक रहे हैं। हनुमान निकम्मा ही है। इसलिये भगवान ने उनको कुछ भी नहीं दिया। लेकिन आप यह बात जानतो नहीं इसलिये इसका ऐसा नतीजा आया। सीता को क्रोध आया। हमने हार दिया उसकी कुछ भी कदर नहीं और ऐसे मोती को हनुमान फेंक रहा है। वह तो आगे जाती है और हनुमान को कहती है—नीचे आकर अपनी मर्कट लीला बताओ। हनुमान कहता है—जैसी आपकी आज्ञा माता जी। सीता कहती है—आज्ञा कुछ नहीं पहले नीचे आओ। मूर्ख जैसे यह क्या कर रहे हो ? हार तोड़ रहे हो ? हनुमान ने कहा—माता जी, मैं इसमें राम तत्त्व देख रहा था। लेकिन इसमें राम तत्त्व दिखाई नहीं दिया तो इसको लेकर क्या करें ? जिसमें राम तत्त्व नहीं वह मोती हो या सामान्य चीज हो हमारे लिए कुछ काम की नहीं। सीता जी इस जवाब से बहुत खुश हुई। सीता जी कहने लगी मैंने तुम्हारे पर व्यर्थ ही क्रोध किया। हनुमान ने कहा—हमारे पर आपका क्रोध भी कृपा के समान है। कोपोऽपि निर्गत धियां रमणीय एव, लोकं प्रणैः परिमलैः परिपूरितस्य। काश्मीरजस्य कटुतापि नितान्त रम्या॥

सज्जनों का क्रोध भी कृपा मानी जाती है। उसमें भी रमणीयता लगती है। काश्मीरज केसर में कटुता हो तो भी वह नितान्त रम्य है। रामायण का यह प्रसंग वहुत ही मधुर प्रसंग है। हनुमान के लिए रामस्वरूप विकर्म हो गया है। भगवान कहते हैं—कर्मणो ह्यपि वोद्धव्यं वोद्धव्यं च विकर्मणः। अकर्मणश्च वोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥ विकर्म से कर्म में मधुरता आती है, रसिकता आती है, अनन्त फल मिलता है लेकिन अकर्म तो हमको भगवान तक, मोक्ष तक ले जाता है। कर्म की गति गहन है।

गुरुशरणता कहानियाँ

अकर्म मोक्ष की दशा है। कर्म में यदि विकर्म नहीं होगा तो अकर्म मोक्ष की दशा में हम नहीं जायेंगे। कर्म में विकर्म कैसे आ सकता है? यह वच्चों का खेल नहीं। यह साधारण वात नहीं। उसको कैसे कर्म में दाखिल किया जाय? विकर्म को कहाँ से लाना? कौन सी खूवी है? भगवान उसका उपाय वताते हैं। वे कहते हैं—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

जो ज्ञान का तत्त्व जाननेवाला गुरु है उसके पास नम्रता से जाया जाय। आजकल के लोग कहते हैं—हम बुद्धिवादी हैं, हम गुरु में मानते नहीं। ठीक है तुम गुरु में मानते नहीं लेकिन गुरु के विना तुम इतना वड़ा कैसे होता। इतना ज्ञान भी तुमको कैसे मिलता। वचपन में माता ही हमारी गुरु रहती है। वह हमको खाना सिखाती है, चलना सिखाती है, वस्तुओं के नाम वताती है। इसी से हमें ज्ञान होता है। गुरु के विना

हमारा चल नहीं सकता। ढोंगी गुरु की हम बात नहीं करते। लेकिन सच्चे गुरु के बिना चल नहीं सकता। बुद्धिमान लोग—अपने को बुद्धिमान समझनेवाले लोग—यह बात मानते नहीं। यह बात नहीं मानना यह कोई बुद्धिमानी नहीं है। नदी नीचे नीचे निम्नस्तर में जाती है तो समुद्र को मिलती है। यदि वह नीचे नहीं जाती तो समुद्र को मिल नहीं पाती और विशाल रूप उसको नहीं मिलता। बुनियाद नीचे-नीचे जाती है तो ऊपर राजमहल बनता है। तो बात यह है कि हममें नम्रता चाहिए। गुरु के बिना चलेगा यह बात अध्यात्म शास्त्र में नहीं चलेगी। महाराष्ट्र के एक सन्त की बात हमको याद आती है—जनार्दन स्वामी के पास ज्ञान के लिए एकनाथ गये थे। जनार्दन स्वामी देवगिरी किला पर रहते थे। एकनाथ जब छोटे थे तभी जनार्दन स्वामी के पास गये थे और उनकी सेवा करते रहते थे। बिछाना करना, थाली कटोरी साफ करना, स्नान के लिए पानी करना और भी कई काम एकनाथ करते रहते थे। गुरु के घर का हिसाब भी वे रखते थे। एकदिन हिसाब में एक पाई या एक पैसे की गलती निकली। एकनाथ जी को लगा—यह गलती कैसे हो सकती है? गुरु के सोने के बाद उन्होंने दीया जलाया और हिसाब करना शुरू किया। हिसाब करते-करते काफी समय बीत गया। ब्राह्म मुहूर्त हुआ। थोड़े ही समय के बाद गुरु उठनेवाले थे। उतनी देर में एकनाथ को अपना हिसाब मिल गया। हर्षान्वित होकर तालियाँ बजाने लगे। तालियों का आवाज हुआ और गुरु उठ गये। हाला कि थोड़ी देर में वे उठनेवाले थे। गुरु उनके पास आये और कहने लगे क्या बात है? किस चीज का इतना हर्ष हो रहा है। एकनाथ स्वामी एक-

दम भान में आये और गुरु का पैर पकड़ कर कहने लगे मुझे माफ कीजिये। मेरे कारण आपको निंद में खलल हुआ। जनार्दन स्वामी ने पूछा—लेकिन इतना हर्ष किस चीज का था यह तो बताओ। एकनाथ ने कहा – हिसाब में एक पाई की गलती हुई थी और वह पाई मिल नहीं रही थी। अभी ही हिसाब मिल गया और इससे मुझे हर्ष हुआ। आजकल तो हम अखबार में पढ़ते हैं कि मन्त्री महाशय जानबुझ कर लाखों रुपये की गलती हिसाब में करते हैं और बाद में डिफेंस करते हैं। छोड़ दीजिए ये बातें, लेकिन कहना यह था कि एक पाई की गलती के लिए भी एकनाथ इतने सचेष्ट थे। हिसाब मिल गया तो हर्ष से उन्होंने तालियाँ बजाईं। गुरु की निंद खुल गई तो उनको अफसोस हुआ। गुरु ने उनको वहाँ ही बिठाये और कहा—एक पाई का हिसाब मिलता है तो हम हर्षान्वित होते हैं। लेकिन इस प्रपंच रूप स्वार्थ रूप संसार में दिन-रात हम गलती करते रहते हैं तो भी हमको कुछ नहीं लगता। कहते हैं उसी समय एकनाथ को ज्ञान हुआ और गुरु जैसे ही समर्थ बन सके। महाराष्ट्र में वे बहुत ही प्रसिद्ध हैं। कई दोषी और पापियों को उन्होंने पुण्यवान बनाये। गुरु प्रसाद से उनको ज्ञान हुआ।

यहाँ एक सामान्य कहानी याद आती है—भगवान के लीला-चरित्र का यह प्रसंग है। द्वारका में एकबार एक चित्रकार आया। वह बहुत ही अच्छी चित्रकला जानता था। वह किसी से चित्रकला सीखा नहीं था। अपनी चित्रकला के लिए उसको बहुत ही गर्व था। वह कहता था—मैं कभी भी किसी के सामने मेरा मस्तक और मेरा हस्तक नत नहीं करूँगा। उन्नत ही रखूँगा। मेरे एक मित्र हैं। वे खानदेश में

रहते हैं। उनका नाम तो मैं नहीं कहूँगा। आपलोग भी नहीं जानते। लेकिन वे वहुत अच्छे चित्रकार हैं। चित्रकला उन्होंने किसी से सीखी नहीं। वह स्वयंभू है। लेकिन उनको गर्व नहीं। वे पारसी हैं। हाँ तो उस चित्रकार ने भगवान के सव रिस्तेदारों का चित्र निकाला। लेकिन जवतक भगवान का चित्र निकाला नहीं तबतक वे चित्र कैसे होंगे? वे विचित्र ही होगा। चित्रकला क्या और संगीत-कला क्या? जवतक भगवान के लिए उसका उपयोग नहीं हुआ तवतक उसका सार्थक्य नहीं। वह चित्रकार पूरे द्वारका में वहुत ही मशहूर हो गया। आखिर वह भगवान के पास आया और कहने लगा मैं आपको पाँच-सात मिनिट के लिए तकलीफ देना चाहता हूँ। आप जरा सामने खड़े रहिये। मैं आपकी आउट लाइन ले लूँगा और वाद में कुछ दिन में चित्र वनाकर दूँगा। भगवान ने कहा—ठीक है। वहुत लोग इकट्ठे हुए थे। देख रहे थे। भगवान की आउट लाइन कैसे लेता है। उनको आनन्द भी होता था कि भगवान का चित्र मिलेगा तो अच्छी वात ही है। हमारा पूजा का विषय वनेगा। भगवान पाँच-दस मिनिट खड़े रहे और वह चित्रकार उनकी रूपरेखा लेकर अपने घर गया। चित्रकला तो उसको अच्छी आती ही थी। पन्द्रह दिन के वाद चित्र निकाल करके वह भगवान के पास आया। सबलोग वहाँ इकट्ठे हुए थे, देखने को उत्सुक थे—भगवान का चित्र कैसा है। चित्रकार ने परदा हटाया। वहुत ही अच्छा चित्र था। भगवान ने उसकी प्रशंसा की। चित्रकार इससे ज्यादा ही गर्वान्वित हुआ और सोचने लगा—अव तो हम स्वर्ग में ही चले गये। भगवान ने सोचा इसको वहुत ही गर्व हुआ है। इसका गर्व उतारना होगा।

भगवान तो सर्वशक्तिमान थे ही उन्होंने अपने हाथ बढ़ाये और चित्रकार को कहा—देखिये, आपके चित्र में हाथ जरा कमजोर है। वास्तव में यह हाथ इतना कमजोर नहीं। चित्रकार ने देखा तो सचमुच ही हाथ कुछ कमजोर था। वह सोचने लगा सारे जन्म में कोई गलती हुई नहीं और अब क्या हुआ कि ऐसी गलती हो गई। उसने भगवान को कहा—भगवन, मैं आपको और एक तकलीफ देना चाहता हूँ पाँच दस मिनट के लिए आप खड़े रहिए। मैं आपकी आउट लाइन लेता हूँ और फिरसे ऐसी गलती नहीं करूँगा। चित्रकार ने आउट लाइन ली और अपने घर वापिस गया। फिर पन्द्रह दिन के वाद वह आया और भगवान को चित्र बताया। भगवान ने और कोई अवयव बढ़ाया और चित्रकार के चित्र में गलती निकाली। चित्रकार को अपनी गलती दिखाई दी और उसको बहुत बुरा लगा। उसने सोचा अब किस मुँह से भगवान को और तकलीफ दूँ। पूरे द्वारका में उनका अपयश हो गया और द्वारका में अपयश हुआ—मतलब सारे देश में अपयश हो गया।

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥

ऐसी अकीर्ति से तो मरना अच्छा है। आत्महत्या करने के ख्याल से वह किसी जंगल में जाकर भटकने लगा। जंगल में किसी ऋषि के आश्रम के पास वह पहुँच गया। आत्महत्या का ख्याल था अतः वह उदास तो दीखता ही था। ऋषि ने पूछा—क्यों, क्या वात है? दुःखी क्यों दिखते हो? चित्रकार ने अपनी पूरी कहानी वताई। ऋषि ने कहा—ठीक है। घवराने की कोई वात नहीं। हमारे पास गुरुमंत्र हैं। हम

आपको गुरु मंत्र देते हैं। आत्मघात का पातक तुम अपने सिर पर मत लो। हमने देखा है और सुना है कि बड़े-बड़े लायक लड़के मैट्रिक में नापास होते हैं, फेल होते हैं तो आत्महत्या करके मरते हैं। जैसे कि मैट्रिक की परीक्षा से उनकी जान कम मूल्य की हो। वे लोग अपने को नालायक समझते हैं। हमने भी कई लड़कों को समझाया है और कहा है—तुम्हारी आत्मा इस सब से बड़ी है। नापास होने से ऐसी आत्म-हत्या का पाप करना ठीक नहीं है। जो उनको इसके बारे में समझाते नहीं वे भी इस पाप के भागीदार हैं। उनके माँ-बाप भी उस पाप के भागीदार है। क्योंकि वे बच्चे को उसका कोई बड़ा गुनाह न होते हुए भी चिढ़ते हैं कि नापास क्यों हुआ ? यह विषयान्तर हो गया। छोड़िये इस बात को। यदि ऋषि नहीं मिलता तो वह चित्रकार भी आत्महत्या करता। गुरु ने उसको कान में मंत्र दिया और हर्षित होकर वह वहाँ से चला गया। द्वारका नगरी में वह आया और उसने भगवान के पास जाना चाहा। द्वारपाल दरवाजे पर ही खड़े थे, उन्होंने उसको कहा—इतनी बार भगवान को तकलीफ देने में तुमको शरम नहीं आती ? अपने स्वार्थ के लिए लोग बड़े लोगों को तकलीफ दिया करते हैं। एलेक्सन के समय में पंडित जी की भी यही दशा होती है। लोग उनके पास जाकर तकलीफ देते हैं। तो उसने द्वारपाल को कहा—अब आखिरी बार। एकबार ही अब मुझे जाने दो। शराब पीनेवाला भी ऐसे ही कहता रहता है। कहता है—मैं शराब छोड़नेवाला ही हूँ। अब एक ही प्याला शराब पीने दीजिये। उस आदमी की आखिर होती है—लेकिन शराब के प्याले की आखिर नहीं होती। वह चित्रकार भगवान के पास

गया और कहने लगा मुझे अब एकबार आपके आउटलाइन लेने दीजिए। भगवान ने कहा--ठीक है, कुछ हरकत नहीं। पन्द्रह दिन के बाद वह वापस आया और यादव भी सब वहाँ इकट्ठे हुए थे। चित्रकार ने भगवान को चित्र बताया। भगवान खुश हुए उसके कंधे पर उन्होंने हाथ रखा और कहा सच बताओ तुमको गुरु-मंत्र मिला है न? गुरु के बिना आदमी का चलता नहीं। चित्रकार ने कहा—'हाँ, हमको गुरु-मंत्र मिला है।' वह चित्र कैसा था। वह तो था आईना। भगवान यदि अपने अंग को बढ़ाते हैं, फुलाते हैं, तो आईना में भी वैसा ही दिखता है। तो बात यह है कि गुरु के बिना आध्यात्म शास्त्र में तो जरा भी चलता नहीं। यही बात भगवान ने अर्जुन को इस श्लोक से कही है।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

सांख्य और योग—एक

पाँचवें अध्याय में अर्जुन कर्म और संन्यास दोनों में से श्रेयकारक कौन है—यह पूछता है। जैसे तीसरे अध्याय में कर्मयोग और समत्व बुद्धि की बात हुई--वैसे ही पाँचवें अध्याय में कर्मयोग और संन्यास की बात चल रही है। भगवान उत्तर देते हैं—सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पंडिताः। एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्॥

कर्म और संन्यास, सांख्य और योग दोनो को जो अलग-अलग मानते हैं वे मूढ़ हैं। दोनो एक ही है। नदी के दो तट होते हैं, लेकिन दो नदी है ऐसा हम नहीं सोचते। वैसे ही सांख्य और योग एक ही दर्शन है। तरह-

तरह से एक ही बात भगवान रख रहे हैं। एक ही सिक्के के दो बाजू रहती है, उसको दो सिक्के नहीं माने जाते। लकड़ी के दो सिरे होते हैं, उसको अलग अलग नहीं माने जाते यह समन्वय की बात है। पंचम अध्याय में भगवान समन्वय की बात बोल रहे हैं और आगे समन्वययुक्त जीवनमुक्त का वर्णन करते हैं।

जीवनमुक्त : पंचम अध्याय की विशेषता

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूत हितेरताः॥

जीवनमुक्त को सांख्य और योग के समन्वय से परिपूर्ण ब्रह्मप्राप्ति होती है और वह सर्वभूत हितेरताः होता है। स्वरों में पंचम स्वर मधुर माना जाता है, वैसे ही पंचम अध्याय का जीवनमुक्त का वर्णन श्रेष्ठ है। विनोबा जी ने गीता प्रवचन में इसको महत्व का स्थान दिया है। जबतक पंचम अध्याय का रहस्य उनको मालूम नहीं हुआ तबतक उन्होंने गीता पर कुछ भी लिखा नहीं। हमारी माता जी उनको कहती रहती थी कि गीता तो संस्कृत में है, तुम उसको मराठी करो और हमको समझाओ। विनोबा जी ने माता जी की यह बात कबूल की थी, लेकिन पंचम अध्याय का रहस्य खुला तभी उन्होंने गीता का अनुवाद किया। पूरे महाराष्ट्र भर में उनकी वह गीताई मशहूर है। घर-घर में पहुँचाने का प्रयत्न किया जा रहा है। लेकिन यह लिखना हुआ, उसके पहले ही हमारी माता जी स्वर्गवासी हुई।

पंचम अध्याय में जीवनमुक्त का वर्णन विशेष है। द्वितीय अध्याय में जैसे स्थितप्रज्ञ का वर्णन है। द्वितीय अध्याय में ब्रह्मनिर्वाण शब्द आता है और पंचम अध्याय में भी यह शब्द आता है। लभन्ते ब्रह्म-निर्वाणम्—सर्वभूत हित का चिंतन करते हुए भगवद्गीता का श्रवण-मनन करके सर्व भूत का श्रेय, हित, किसमें है यही हमको करना चाहिए। और ऐसी ही प्रार्थना करके हम प्रवचन समाप्त करते हैं।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात् ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

★

अध्याय ६, ७, ८

सर्वोदय गीता-यज्ञ के अवसर पर महर्षि शिवाजी भावे का प्रवचन

दिनांकः—२२—९—६३—स्थान—दरभंगा ।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतःस्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै—
र्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः ॥

द्वितीय से पंचम अध्याय तक का समालोचन

भगवान ने अर्जुन को द्वितीय अध्याय में ब्रह्मविद्या, योग शास्त्र और स्थितप्रज्ञ का दर्शन कराया। तृतीय अध्याय में भगवान ने कर्मयोग की विशेषता बतला कर आखिर अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देते हुए राग-द्वेष वियुक्त रहना यह सार बताया। चतुर्थ अध्याय में भगवान ने योग-परंपरा और ज्ञान-परंपरा दो तरह से बताई। साथ-साथ अपने दिव्य जन्म कर्म का भी दर्शन करवाया।

शृण्वन सुभद्रानि रथांगपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानिलोके ।
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन् विलज्ज्जो विचरेत् असंगः ॥

भागवत में यह प्रसिद्ध श्लोक आता है। भगवान के अवतार का, दिव्य जन्म कर्म का भक्त लोग गायन करते हैं और उसमें निमग्न रहते हैं।

भागवत का यह प्रसिद्ध श्लोक है। तो भगवान का अवतार रहस्य चौथे अध्याय में भगवान बताते हैं। उस अवतार रहस्य को जानते हुए उस कार्य में सहायता की कोशिश करना, भाग्य खोजना हो तो उसके लिए कर्म, अकर्म और विकर्म जानना होगा। ऐसा भगवान ने कहा। कर्म, अकर्म और विकर्म को जानना यह सुलभ बात नहीं। उसके लिए तपस्या चाहिए। सामान्य आदमी के लिए वह कैसे सुलभ हो सकता है यह बताते हुए भगवान गुरुशरणता बताते हैं। पंचम अध्याय में सांख्य और योग, संन्यास-निष्ठा और योग-निष्ठा एक ही बात है ऐसा भगवान कहते हैं। बहुत से टीकाकार 'द्वे निष्ठे' ऐसा उसका अर्थ लेते हैं। लेकिन आखिरी स्थिति एक ही है। इसलिये भगवान कहते हैं—

लोकेस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥

यहाँ भगवान ने द्विविधा निष्ठा यह शब्द एक वचन में प्रयुक्त किया है। यह रहस्य बहुतों को मालूम नहीं। इसलिये कई टीकाकार द्वे निष्ठे ऐसा कहते हैं। लेकिन भगवान ने एक ही निष्ठा बतलाई है। दो का तो आभास ही होता है। इस तरह सांख्य और योग की एकता बतलाकर जीवनमुक्त का वर्णन भगवान ने किया। पाँचवें अध्याय तक हमने कल देखा था। पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

आत्मोद्धार की कहानी

अर्जुन को विकर्म, ध्यानमार्ग, योगमार्ग भगवान कह रहे हैं। आज का अध्याय योगमार्ग का, ध्यानमार्ग का अध्याय है। योगकर्म सूक्ष्म होते हैं। जिससे की कर्मयोग में प्रचंड शक्ति आती है। कर्म माने गोला-बारूद और विकर्म माने चिनगारी। यदि चिनगारी नहीं होती, यदि विकर्म नहीं होता तो सबकुछ व्यर्थ जाता है। विकर्म योगमार्ग में बतलाना भगवान शुरू करते हैं। चिनगारी यदि हाथ में आती है तो आदमी कर्म में शक्ति ला सकता है। छठे अध्याय में भगवान ने कहा है कि मनुष्य को आत्मोद्धार की तीव्र लालसा, तीव्र जिज्ञासा, लगनी चाहिये। इसलिये छठे अध्याय की शुरू में भगवान कहते हैं—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥

आदमी खुद ही अपना उद्धार करता है। लेकिन आत्मोद्धार की लगन यदि नहीं है तो वह किसी भी विषय में प्रवीण नहीं होता। आत्मोद्धार के लिए छटपटाहट बढ़नी चाहिए। 'उद्धरेदात्मनात्मानं' यह महावाक्य है। आत्मोद्धार में यदि छटपटाहट नहीं है तो आगे बढ़ना शक्य नहीं। यहाँ एक दृष्टान्त याद आता है। ऐसे तो यह बच्चों की कहानी है। लेकिन सार यह है कि यदि लगन नहीं, छटपटाहट नहीं तो आदमी सफल नहीं होगा, डूब जायगा। योगशास्त्र में कहते ही हैं कि

यदि प्राणायाम ठीक तरह से नहीं करते तो आदमी को लाभ तो नहीं ही होता उलटा नुकसान होता है। वैसे ही आत्मोद्धार में ठीक तरह से प्रयत्न करते हैं तो ठीक है नहीं तो डूब जाते हैं। यह बच्चों की कहानी है। लेकिन इसमें बहुत बहुत सार निकलता है। एक छोटा सा गाँव था। गाँव के पास तालाब था। बंगाल बिहार में तो देहात-देहात में तालाब रहते ही हैं। महाराष्ट्र में इतने तालाब नहीं होते। उस तालाब में दो मेढक रहते थे। संस्कृत शब्द मंडूक पर से मेढक शब्द आया है। वे दोनों मेढक तालव से इधर-उधर नहीं जाते थे। इसको कूपमंडूक वृत्ति कहते हैं। आत्मोद्धार के लिए व्यापक वृत्ति रखना पड़ता है और संकुचित, कूपमंडूक वृत्ति छोड़ना पड़ता है। उन दोनो मेढक जन्म से ही मेढक थे तो कूपमंडूक वृत्ति उनमें थी तो वह ठीक है। लेकिन हम आदमी होते हुए भी घर में, एक सीमित दायरे में छिपे हुए रहते हैं। खास करके भारतवासी लोग ज्यादा कूपमंडूक वृत्ति रखते हैं। दूसरे देशों के बारे में सोचते ही नहीं। वहाँ जाते भी नहीं। अँग्रेजी में उसको सेल्फ सेंटर्ड कहते हैं। ऐसी वृत्ति वे लोग रखते हैं। ऐसी वृत्ति रहेगी तो हमारा विकास नहीं होगा। विवेकानन्द अमेरिका गये और वहाँ से उन्होंने भारतवासियों को आवाज दी—ऐ भारतवासियो, तुमलोग बाहर आओ और देखो कि और भी बहुत लोग दुनिया में रहते हैं। आप अकेले हैं ऐसा नहीं। हाँ तो मैं कहानी कहने जा रहा था। उन दोनो मेढकों ने सोचा कि हम तालाब छोड़कर व्यापक जगत में जायेंगे। धीरे-धीरे उन्होंने चलना शुरू किया और वे लोग दूसरे एक शहर में पहुँचे। मेढक की चाल को मंडुकप्लुति कहते हैं। उसकी चाल एक खास तरह

की रहती है। वैसे हरेक आदमी की चाल अलग-अलग तरह की रहती ही है। उसमें मेंढक की कोई खास तरह की रहे तो कोई आश्चर्य नहीं। दोनो मेढक शहर में पहुँचे और शहर देखने लगे। तरह-तरह का उन्होंने माल देखा, दूकानें देखीं, आदमी देखे। आहिस्ता-आहिस्ता वे आगे बढ़ रहे थे और आश्चर्य से चीजों को देख रहे थे। आते-जाते लोगों को देख रहे थे। बड़ी दूकानें देख रहे थे। सब उनके लिये आश्चर्य ही आश्चर्य था। आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनम्— भगवान ने यह आत्मज्ञान के बारे में कहा है। लेकिन मेढकों को यह शहर ही आश्चर्यवत् लगता था। शहर में ही उनको विश्वरूप दर्शन हुआ। उन्होंने सब देखा तो ठीक लेकिन खाने को कुछ नहीं मिला। उन्होंने सोचा अबतक बहिरंग दर्शन किया। अब अंतरंग दर्शन करना पड़ेगा। शहर का विविध माल उन्होंने देखा, लेकिन तृप्ति नहीं हुई। जबतक आदमी अन्दर नहीं जाता तो बाहर की दुनिया कितनी भी व्यापक हो उसको तृप्ति नहीं होती। आदमी को संकुचितता में से व्यापकता में और व्यापकता में से अन्तरंगता में जाना चाहिए। मेढकों ने सोचा अब हम किसी रईश के घर में जायँ और देखें क्या-क्या चीजें हैं। हमको खाने को तो मिलेगा। ऐसा सोचकर वे एक घर में आये। यह योग-शास्त्र का विषय चल रहा है—यह ध्यान में रखना चाहिए। घरके एक कमरे में वे प्रविष्ट हुए। उन्होंने वहाँ देखा तो वह बहुत बड़ा कमरा था उसमें उप-योगी—निरुपयोगी, नयी-पुरानी, अच्छी-बुरी कई चीजें पड़ी हुई थीं। वह स्टोर रूम था। हरेक घर में ऐसा स्टोर रूम रहता ही है। स्टोर रूम को मन कह सकते हैं। मन की भी ऐसी ही दशा है। उसमें भी कई उपयोगी—निरुपयोगी, अच्छी—बुरी, नयी—पुरानी चीजें पड़ी रहती हैं। आदमी को ध्यान करना

है तो पहले मन का अध्ययन करना पड़ता है। मन के पंच विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन सब को छोड़कर अन्दर जाना पड़ता है। मन में भी माल आता है और ज़ाता है। टूटा–फूटा उपयोगी–निरुपयोगी, दैनिक काम का तो क्वचित ही काम में आनेवाला वैसा माल रहता है। वहाँ से वे मेढक एक दूसरे कमरे में गये। उस कमरे में जाजिम बिछाई हुई थी। कुछ कुर्सियाँ थीं, कुछ तस्वीरें थीं। जो कोई भी आये उसका स्वागत हो सके ऐसा यह कमरा था। हर घर में ऐसा कमरा रहता ही है। मन की अंतःकरण की योगशास्त्र की बातें चल रही है यह ध्यान में रखना चाहिए। इस ड्राइंग रूम को अन्तःकरण का अहंकार का कमरा कहा जा सकता है। मन स्टोर रूम है, अहंकार ड्राइंग रूम है। फिर दोनो मेढक आगे चलते हैं। हर घर में बच्चे के पढ़ने के लिए एक कमरा रहता ही है। वहाँ मास्टर जी आते हैं, बच्चे को सिखाते हैं। पढ़ने के लिए कुछ किताबें भी रहती हैं। छोटी-सी लाइब्रेरी हर घरवाले रखते ही हैं। अंतःकरण के इस कमरे को बुद्धि का कमरा माना जायगा। मन स्टोर रूम है, अहंकार ड्राइंग रूम है, बुद्धि रीडिंग रूम है। लेकिन मेढकों को तो भूख लगी थी। खाये बगैर किसी आदमी को नहीं चलता। आदमी उपवास करते हैं, लेकिन उस समय भी खाने की इच्छा उनके मन में रहती ही है। आखिर वे मेढक रसोईघर में पहुँचे। रसोईघर पोषक कमरा होता है। चित्त का, चेतन-शक्ति का यह कमरा है। वहाँ वे गये और देखते हैं क्या–क्या खाने की चीजें हैं। वहाँ तो बड़े–बड़े बर्तन थे। उन्होंने अपनी मंडुक प्लुति से जरा उड़ कर देखा तो एक बर्तन में दाल थी, एक में चावल था और एक बर्तन में छाछ थी। वे दोनो छाछ

में कूद पड़े । वहाँ तो उनको मरने की ही नौवत आ गई । मेढक तालाव के पानी में रह सकता है लेकिन छाछ में, दूध में रह नहीं सकता, अव क्या किया जाय ? एक मेढक को तो कोशिश करने का कुछ सूझा नहीं और वर्तन के नीचे पड़े-पड़े वह मर गया । दूसरा मेढक सोचने लगा हम कुछ प्रयत्न तो करें । वह उसी वर्तन में अपने पैड़ हिलाने लगा । पैर हिलाते-हिलाते उस छाछ का मक्खन ऊपर आया तो मेढक मक्खन पर वैठ गया । थोड़ी देर के वाद रसोई वनानेवाला आया और उसने देखा कि छाछ में मेढक पड़ा है । मेढक यहाँ कैसे आया, उसका उसे आश्चर्य हुआ । लेकिन मेढक को पैर पकड़ कर उसने वाहर निकाला । मेढक तो वन्धन में से मुक्त हुआ, उसका तो आत्मोद्धार हुआ । आत्मोद्धार का प्रयत्न करते हैं, कोशिश करते हैं तो भगवान मदद में आता ही है ।

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशित चेतसाम् ।।

यदि कोशिश करते हैं तो जरूर आत्मोद्धार होगा ही । यही वात भगवान पहले वतलाई । उद्धरेदात्मनात्मानं—यह सव करने की वात है ।

युक्ताहार विहार

भगवान कहते हैं—यदि योग्य तरह से ये सब समझना हो तो योग्य तरह से रहना भी चाहिए ।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु । युक्तस्वप्नाववोधस्य योगो भवति दुःखहा ।। आहार जो करना है, विहार करना है वह कैसे करना

चाहिऐ, हर क्रिया कैसी होनी चाहिऐ यह भगवान बताते हैं। बहुत जागते रहेंगे तो भी चलेगा नहीं। रात को पहरेदार जगता है और बोलता रहता है—"सोनेवाले जागते रहो"—इसके दो मतलब हैं। एक तो यह कि जो सोते हैं उसको जगते रहना चाहिए और दूसरा मतलब यह है कि जिसके पास सोना है उसको जगते रहना चाहिए। जिसके पास सोना नहीं उसको सोना ही सोना है। माने मीठी नींद है। और जिसके पास सोना है उसको चिन्ता है। भगवान कहते हैं—नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः। न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन। बहुत जगना ठीक नहीं और कुम्भकर्ण जैसे सोते रहना भी ठीक नहीं। वास्तव में कुंभकर्ण को तो निन्द नहीं चाहिये थी। सरस्वती ने उसको ऐसी प्रेरणा दी थी। विभीषण सत्वगुणी था, रावण रजोगुणी था और कुंभकर्ण तमोगुणी था। तीन भाई तीन गुण के प्रतीक थे। कुंभकर्ण ने तपस्या की और भगवान को प्रसन्न किया। भगवान ने कहा—वर माँगो। कुंभकर्ण तो इन्द्रासन माँगनेवाला था। लेकिन सरस्वती ने सोचा कि यह तमोगुणी यदि स्वर्ग में जायगा तो स्वर्ग को भी बिगाड़ेगा। वहाँ भी सुख नहीं रहने देगा। तो उसकी जिह्वा को कुछ करना चाहिए जिससे कि वह इन्द्रासन माँग न सके। कुंभकर्ण जब माँगने लगा तो इन्द्रासन के बदले निद्रासन उसने कहा। उसकी मनसा तो इन्द्रासन माँगने की थी। भगवान ने तथास्तु कहा और छः महीने की नींद कुंभकर्ण को मिल गई, ऐसी बात है। भगवान ने कहा है—नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः। बहुत खाना यह भी योग नहीं और बिल्कुल नहीं खाना यह भी योग नहीं। बहुत सोना यह भी योग नहीं

ग्रौर विल्कुल नहीं सोना यह भी योग नहीं। युक्ताहारविहारस्य युक्त-चेष्टस्य कर्मसु—इस तरह चलना पड़ेगा। मध्यम मार्ग ग्रहण करना पड़ेगा।

योग की मिसाल : बुद्ध का मध्यम मार्ग

यह विहार प्रान्त है, भव्य प्रान्त है। भगवान बुद्ध का जन्म यहाँ हुग्रा था। उन्होंने ग्रष्टांग मार्ग, मध्यम मार्ग वताया है। वहुत सोना ठीक नहीं, खूव ग्रशन भी ठीक नहीं यह भगवान बुद्ध ने कहा। वे कपिल-वस्तु के थे। कपिलवस्तु यहीं ही है। वहुत दूर नहीं। हाला कि उनका जन्म तो लुम्विनी में हुग्रा था। लेकिन उनको कपिलवस्तु में लाया गया। भगवान बुद्ध की कहानी वड़ी रोचक कहानी है। उनके पिता का नाम—शुद्धोदन था। उनके एक चाचा का नाम शुक्लोदन था। दूसरे चाचा का नाम ग्रमृतोदन था। तीसरे चाचा का नाम धोतोदन था। मतलव यह कि सवके सव ग्रोदन थे। ग्रोदन माने चावल। विहार ग्रौर नेपाल राज्य में चावल होते हैं यह ठीक वात है। उसका इन्कार नहीं करते। लेकिन सोचने की बात है कि चावल की जरूरत हो इसलिये हम ग्रपने वच्चे-वच्ची का नाम चावल रखें यह क्या ठीक है? उस जमाने में इतनी जड़ता थी, इतना उपयोगितावाद था, जिसको युटिलिटेरियनीज्म कहते हैं, वह इतना था कि नाम भी चावल रखते थे। हमको नोट की रुपये की जरूरत है लेकिन हमारी लड़की का नाम नोट ग्रौर लड़के का नाम रुपया नहीं रखेंगे। यह तो जड़तावाद, उपयोगितावाद की परमावधि

है। शुद्धोदन माने शुद्ध चावल। कितना भोगवाद, कितना उपयुक्ततावाद। यह आश्चर्य की बात है हमको रोटी की जरूरत है, लेकिन लड़की का नाम हम रोटी नहीं रख सकते। चाहे हमको रोटी न भी मिले। भोगवाद, जड़वाद, उपयुक्ततावाद उस जमाने में कितना आगे बढ़ा था इसका दर्शन इस पर से होता है और सिद्धार्थ माने भी क्या? जो चावल बेचकर अर्थ सिद्ध करता है उसको सिद्धार्थ कहेंगे। चावल जरूर चाहिए लेकिन वह चावल यह हमारा ध्येय नहीं है। यह तो शारीरिक जरूरत है। ध्येय मानसिक रहता है। उस जमाने में भोगवाद बहुत ही बढ़ा था। वह भोग का जमाना था। योग के विरुद्ध बातें चल रही थीं। शुद्धोदन को कोई भी पुत्र नहीं था। आखिर बहुत देर में पुत्र हुआ। ऐसी अवस्था में पुत्र हुआ तो वह जीयेगा कि नहीं यह जानने के लिए भविष्यवेत्ताओं को बुलाये। भविष्यवेत्ताओं ने आकर कुछ लक्षण बताये। भविष्यवेत्ता हमेशा एक बाजू से ही बोलते नहीं। दोनो बाजू से बोलते हैं, जिससे कि वे पकड़े न जायँ। वे बड़े चतुर रहते हैं। अखबार में भविष्यवाणी लिखते हैं तो भी आपलोग देखिये कि वे ऐसे लिखते हैं कि जिससे कि पकड़े न जायँ। भविष्यवादी और पोलिटिसियन्स एक बात बोलते ही नहीं। वे ऐसी बात बोलते हैं जिसके दो अर्थ होते हैं। सिद्धार्थ राज्य चलायेगा कि नहीं, जीयेगा कि नहीं इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा—या तो वह चक्रवर्ती सम्राट बनेगा, या तो बड़ा धर्म-संस्थापक, धर्म-प्रवर्तक बनेगा। इन दोनो भविष्यवाणी में जरा भी सामंजस्य नहीं। एक सिरा एक ओर है और दूसरा सिरा दूसरी ओर है। कः केन संबंधः—दोनो को एक दूसरे के साथ जरा भी

सम्वन्ध नहीं। मंत्रियों ने सोचा अब क्या करना चाहिए जिससे कि सिद्धार्थ राजा ही हो, चक्रवर्ती सम्राट ही हो और धर्मप्रवर्तक न हो। वे भोगवादी, जड़वादी, उपयुक्ततावादी इतने थे कि सिद्धार्थ को सम्राट ही वनाना चाहते थे। लेकिन उनको मालूम नहीं था कि किसी को वाहर से वनाया नहीं जाता, वाहर से वनाना होता नहीं। आजकल के वड़े-वड़े शिक्षाशास्त्री भी कहते हैं कि हम लड़के को पढ़ाते हैं। वास्तव में लड़के को कुछ पढ़ाते नहीं सिर्फ सहूलियत ही देते हैं। ज्ञान तो लड़के के अन्दर पड़ा हुआ ही है। मूर्त्तिकार मूर्त्ति वनाता नहीं वह तो सिर्फ मूर्ति का अनावरण ही करता है। मूर्त्ति पत्थर में छिपी हुई ही है। उसको वह आवृत करता है। शिक्षाशास्त्री भी इतना ही करते हैं। अपने यहाँ भी वड़े-वड़े शिक्षाशास्त्री हो गये। उनका काम कोई नई चीज वनाने का नहीं होता। अन्धे लड़के को वे आँख नहीं दे सकते। वीज तो अन्दर है ही, सहूलियत देकर उसको विकसित करते हैं। लेकिन राजा ने और मंत्रियों ने सोचा कि सिद्धार्थ चक्रवर्त्ती सम्राट ही हो और संन्यासी न हो। जैसे कि यह उनके वश की वात थी। इस दृष्टि से सिद्धार्थ को भोग-विलास में लिप्त रखा गया। भोग-विलास में लिप्त रहना यह क्या सम्राट का अर्थ है ? भोग विलास में लिप्त रहना यह कितनी तुच्छ जीव का काम है। सम्राट पर तो कितनी जिम्मेवारियाँ आती हैं। लेकिन उस समय की कल्पना कितनी भोगवादी थी यह इसपर से दिखाई देता है। राजा शुद्धोदन ने सिद्धार्थ के लिए तीन राजमहल वनवाये। एक राजमहल ऐसा था कि जिसमें वारिश का सुख मिल सकता है लेकिन वारिश का दुःख नहीं। दूसरा राजमहल ऐसा था कि जिसमें ठंढ का सुख मिल

सकता है लेकिन ठंढ का दुःख नहीं। तीसरा राजमहल ऐसा था जिसमें गर्मी का सुख मिल सकता है, लेकिन गर्मी का दुःख नहीं। वस्तुस्थिति को कैसे टालना यही ये लोग जानते हैं। राजपुरुष वास्तविकता को हमेशा छिपाते हैं। वेदान्त वास्तविकता कहता है। हमको षड्भाव लगे हुए हैं, जन्म मृत्यु लगे हुए हैं, उत्पत्ति, स्थिति, लय सबका होता रहता है,—यह वेदान्त कहता है। शुद्धोदन ने तीन राजमहल बनाये थे। खाना, पीना और सोना यही सिद्धार्थ को काम दिया था। जैसे कि वह पत्थर का पुतला हो कुछ सोच भी न सकता हो। सिद्धार्थ अन्दर रहकर भी दुनिया की वास्तविकता के बारे में सोचता रहता था। बाहर की दुनिया कैसी होगी यह सोचता रहता था। मंत्रियों को लगा, हमने जो प्रयत्न किये वह विफल गये। तो अब उसकी शादी-ब्याह किया जाय। शादी की भी उस जमाने में कितनी विपरीत कल्पना थी। भोग के लिए, विलास के लिए शादी मानते थे। गृहस्थाश्रम की कल्पना कितनी भव्य है। ब्रह्मचर्याश्रम और वानप्रस्थाश्रम के बीच गृहस्थाश्रम आता है। तो क्या वह भोग के लिए हीं होगा ? सब कल्पना भोगवादी, जड़वादी थी। योग के विरुद्ध थी। सिद्धार्थ की शादी कर दी गई। लेकिन शादी होने से क्या हुआ ? अन्दर का विचार-बीज तो प्रस्फुटित होता ही रहता है। सिद्धार्थ को एक लड़का हुआ। उसको बहुत बुरा लगा कि हम प्रपंच में आगे बढ़े, भोग में आगे बढ़े, योग में नहीं। इसलिये उसने उस लड़के का नाम राहुल रखा जो बाद में भी उसी नाम से प्रसिद्ध हुआ। सिद्धार्थ सोचने लगा—बाहर की दुनिया देखना चाहिये। अपनी यह इच्छा उसने पिता को बताई। पिता ने सिद्धार्थ के लिए व्यवस्था कर दी। हमारे यहाँ भी

मिनिश्टर आते हैं तो उनके लिए व्यवस्था की जाती है । रास्ते साफ नहीं होते तो साफ किये जाते हैं । मतलब क्या ? मिनिस्टर को ही साफ रास्ता चाहिये और औरों को कचरा चाहिये ? राजपुरुष को वास्तविकता मालूम ही नहीं होती। शहर का शृंगार ही उसके सामने रखा जाता है। राजपुरुष का प्रोग्राम भी वद्ध प्रोग्राम रहता है। जो देखने की चीजे होती है वह उनको कृत्रिमता से बताई जाती है। अभी के और पहले के राजपुरुष के सामने भी ऐसा नाटक होता रहता है। वास्तविकता उनकी समझ में ही नहीं आती। अपने देश की हालत हमारे मंत्री लोग जानते ही नहीं। वैसे सिद्धार्थ को भी निश्चित रास्ते से घुमाया गया। सिद्धार्थ ने कहा—ठीक है अब जरा गली में तो घुमाइये। दरिद्रनारायण का दर्शन तो करने दीजिये। दरिद्रनारायण का दर्शन ही सच्चा दर्शन है। लक्ष्मीनारायण के दर्शन से भी दरिद्रनारायण का दर्शन विशेष महत्व रखता है। और ये मुर्खनारायण लोग दरिद्रनारायण का दर्शन ही न हो ऐसी व्यवस्था करते हैं। खैर सिद्धार्थ गली-गली में घूमे और उन्होंने रोगी, मृत, संन्यासी वगैरह को देखा। हठभोग के खिलाफ उन्होंने वगावत की और राजमहल छोड़ा। गया के पास जाकर उन्होंने तपस्या की। तपस्या प्रतिक्रियात्मक थी। नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः उनके मन में प्रतिक्रिया थी। हठ भोग के खिलाफ हठयोग चल रहा था। उन्होंने खाना भी छोड़ दिया। उनका शरीर अस्थिपिंजर जैसा हो गया। योगज्ञान तो दूर रहा, लेकिन उठना, बैठना उनके लिए मुश्किल हो गया। एक दिन तंद्रित अवस्था में या। स्वप्न में दो–तीन लड़कियाँ गानेवाली और बजानेवाली थी। एक लड़की दूसरी लड़की को कहती है तंत्री

का तार खूब तनाव से रखेंगे तो भी मधुर स्वर नहीं निकलेगा और ढीला रखेंगे तो भी ठीक स्वर नहीं निकलेगा। उसको मध्यम ही रखना होगा। सिद्धार्थ स्वप्नावस्था में से जागृत में आये तो सोचने लगे—इस स्वप्न का अर्थ क्या है ? उनको अर्थ वोध हुआ कि मध्यम मार्ग से चलना चाहिये। बहुत ढीला भी नहीं और बहुत खींच कर भी नहीं ऐसे चलना चाहिए।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥

युक्ताहार होना चाहिए। सिद्धार्थ ने अब हठयोग छोड़ दिया। पहले हठ भोग था, उसमें से निकलकर हठयोग आया और अब राजयोग आया। कुछ भिक्षा ग्रहण करके वे राजयोग में साधना करने लगे। गीता का मार्ग हठयोग का नहीं, हठभोग का नहीं राजयोग का है। वैशाखी पूर्णिमा को वोधगया के पास सिद्धार्थ को ज्ञान हुआ और वे वुद्ध कहलाये। उन्होंने मध्यम मार्ग का आन्दोलन चलाया। इस प्रान्त का नाम तो मगध था, मिथिला था। वह वदल कर पूरे प्रान्त का नाम विहार माने बुद्धि का आश्रम ऐसे हो गया। जगत में कोई भी ऐसा प्रान्त नहीं जिसका नाम विहार से पड़ा हो। यहाँ की विशिष्टता यह है कि भगवान वुद्ध ने योग-मार्ग का उपदेश दिया। यदि योगमार्ग में आगे वढ़ना है तो आत्मोद्धार की लगन होनी चाहिए। उसके लिए युक्ताहार-विहार होना चाहिए।

योग की एकान्त साधना

उससे समत्व आयेगा और आगे कैसे वढ़ेंगे तो भगवान कहते हैं—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥

एकान्त देश में सीधे आसन लगाकर बैठना चाहिए। और कहते हैं—

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥

एकान्त में बैठना चाहिए। एकान्त से क्या होगा? एकान्त की एक खूबी है। बड़े-बड़े कवियों ने उसका वर्णन किया है। सेक्सपीयर कहते हैं—

दिस थीन आवर लाइफ एक्जेम्पट फ्रॉम पब्लिक हौन्ट
फाइन्ड टंग्स इन ट्रीज, बुक्स इन दी रनिंग ब्रुक्स,
सर्मन्स इन स्टॉन्स ऐन्ड गुड इन एवरी थींग।

अपना एकान्त जीवन क्या-क्या देता है—तो सेक्सपीयर कहता है—

हमारा एकान्तवासी जीवन क्या-क्या बोध देता है? पन्ने में, पते में हमको उपनिषद मि ता है। पत्थर से बोध मिलता है। झरने से बोध मिलता है। बहते झरने में से वेद ग्रन्थ मिलता है। बुक्स इन दी रनिंग ब्रुक्स, सरमन्स इन स्टॉन्स ऐन्ड गुड इन एवरी थिंग। हरेक चीज में से बोध मिलता है यह एकान्त की खूबी है।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥

सिर्फ एकान्त में जाने से मन एकाग्र नहीं होता। एकान्त में कई लोग घबराते हैं। यह साधन जरा कठिन है। सब के हित के लिए कोई साधन रहना चाहिए। योगमार्ग का साधन कठिन है, मन को जीतना यह सूक्ष्म बात है और कठिन है। इसलिये भगवान अब सुलभ रास्ता बतलाते हैं। कहते हैं—न किंचिदपि चिन्तयेत्—कुछ भी मत सोचो।

चिंतन छोड़ दो। मन यदि किसी चीज के चिंतन के लिए जाता है तो उसको खींचकर लाओ।

चंचल मन : अभ्यास वैराग्य

अर्जुन ने सोचा—यह तो ठीक है, लेकिन मन को शान्त रखना कैसे हो सकता है। जब अर्जुन ऐसी बात कहता है तब सामान्य लोगों की तो बात ही क्या। वह कहता है—

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढ़म्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

आप कहते हैं—एकान्त में बैठो, युक्ताहार विहार करो, आत्मोद्धार की जिज्ञासा रखो—यह सब ठीक है, लेकिन मन इतना चंचल है कि वह एकाग्र ही नहीं होता। चंचलं हि मनः कृष्ण ऐसा अर्जुनं कह रहा है। वह कहता है—एक दफा वायु को भी हाथ में पकड़ सकते हैं, लेकिन मन को पकड़ना बहुत कठिन बात है। संतों ने भी ऐसे ही कहा है—सब नरहरि चंचल है मति मेरी, मैं कैसे भगति करूँ तेरी नरहरि चंचल है मति मेरी। अर्जुन को कहना पड़ा कि मन चंचल है तब दूसरों की तो बात ही क्या ? भगवान को लगा था कि युक्ताहार विहार, एकान्त आसन, वगैरह कहने से अर्जुन ठीक हो जायगा, उसको समाधि लग जायगी, क्योंकि भगवान का मन चंचल नहीं रहता। लेकिन अर्जुन पूछता है—मन स्थिर नहीं रहता तो क्या किया जाय ? नरहरि चंचल है मति मेरी, मैं कैसे भगति करूँ तेरी नरहरि चंचल है मति मेरी—हे भगवन्, मेरी मति बहुत ही चंचल है। बुद्ध ने ध्यान की कोशिश की लेकिन आगे

उनको सात वर्ष लगे। सात वर्ष तक कोशिश की। एक दिन बोधगया में उनको निर्वाण बोध प्राप्त हुआ। युक्ताहार विहार से शारीरिक समाधान उनको हुआ और उसका मन पर असर रहता है। फिर मन का संशोधन करना उन्होंने प्रारम्भ किया। फिर भी कहते हैं—कि एक रात को मार ने उनपर आक्रमण किया। ऐसी कहानी उनके जीवन-चरित्र में आती है। बहुत प्रयत्न के बाद वे जीत सके, चंचल मन को ठीक कर सके। मन का मध्य बिन्दु स्थिरता रहता है। शरीर का मध्य बिन्दु आरोग्य रहता है। बुद्धि को समत्व युक्त करना पड़ता है। बुद्धि में संतुलन नहीं रहता तो संतुलन रखने की कोशिश करनी पड़ती है। बुद्ध ने चार तरह के राजयोग कहे हैं। त्रिपिटक में उसका वर्णन आता है। एक तो बुद्धि का मध्यबिन्दु समत्व खोजकर उसमें बुद्धि स्थिर रखनी पड़ती है। दूसरा प्राण का आवागमन विषम न हो इसका ध्यान रखना पड़ता है। प्राण का आवागमन विषम रहा तो मन बुद्धि चंचल रहते हैं। इसलिये विषम स्वरूप को छोड़कर मध्यबिन्दु ढूँढ़ना चाहिए। तीसरा स्वरूप है आनन्द का स्वरूप। यह आत्मा का स्वरूप है। मन बुद्धि शरीर से परे का यह स्वरूप है। यह योगमार्ग भगवान ने षष्ठम अध्याय में थोड़े में बताया। मन चंचल रहता है स्थिर नहीं होता तो क्या करना चाहिए अब आगे की बात भगवान कह रहे हैं। सर्प को दूध पिलाते हैं तो उसकी बुद्धि बदलेगी ही ऐसा नहीं। पयः पानं भुजंगानाम् केवलं विष वर्द्धनम्। युक्ताहार विहार से, एकान्त से बुद्धि-वृत्ति बदलेगी ही ऐसा नहीं। मन तो चंचल है ही। नरहरि चंचल है मति मेरी, कैसे मैं भगति करूँ तेरी नरहरि चंचल है मति मेरी। मेरी मति बहुत चंचल

है ऐसा अर्जुन कह रहा है। जिसको सख्य भक्ति का सौभाग्य मिला, जिसको भगवान का सहवास मिला—वैसा अर्जुन भी कह रहा है—चंचलं हि मनः कृष्ण--कई लोग कहते हैं—हमने मन को जीता, मन अपने आप वश में आया यह अहंकार की वातें हैं। भगवान अर्जुन को कहते हैं—ठीक है मन चंचल है, उसका कोई उपाय ही नहीं ऐसी वात नहीं। अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते। योग सूत्र में भी कहा है—अभ्यासवैराग्याभ्याम् तन् निरोधः अभ्यास और वैराग्य भी कोई सामान्य वात नहीं। यदि अभ्यास और वैराग्य भी नहीं सधता तो क्या करना चाहिए ? साधना और योग की वातें चंचल मन के लिए फिजूल ही है। अभ्यास और वैराग्य भी कोई खेल नहीं। नामाम्परायः प्रतिभाति वालं ऐसा कठोपनिषद में भी कहा है। यह खेल की वात नहीं।

अभ्यास-वैराग्य का सहारा भक्ति

कोशिश करते हैं, लेकिन सफलता नहीं मिलती तो क्या किया जाय ? भगवान कहते हैं—योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥ भक्ति का सहारा आखिर लेना ही पड़ता है। अपने मन से हम करेंगे, हम से सवकुछ हो सकता है—यह सव अहंकार की वात है। कोशिश तो करनी ही चाहिए। लेकिन भगवान की मदद के विना कुछ नहीं हो सकता। भगवान का स्मरण, भगवान की भक्ति करनी पड़ती है। पातंजल योग सूत्र में भी कहा है—तस्य वाचकः प्रणवः ईश्वर प्रणिधानात् वा--ईश्वर की शरणता में योगमार्ग सुलभ होता है। सरल होता है।

योग के लिए अष्टधा प्रकृति : चतुर्विध भक्त

यहाँ से सप्तम अध्याय की शुरुआत होती है। भक्ति भी सुलभ है ऐसा नहीं। योग, अभ्यास, वैराग्य तो सुलभ है ही नहीं। भक्ति के लिए भी प्रकृति को दूर करना पड़ता है। भक्ति के खिलाफ, भक्ति के विरोध में प्रकृति खड़ी रहती है। इसलिये अष्टधा प्रकृति और चतुर्विध भक्ति का प्रकार भगवान ने कहा। योग के लिए जिसकी जरूरत है ऐसा मार्ग भगवान वता रहे हैं। चार तरह के भक्त भगवान वताते हैं। कहते हैं— चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ। ।यह चार तरह की भक्ति भगवान कह रहे हैं। रामायण में इन चारों भक्ति का दर्शन हमें होता है।

आर्त्त भक्त : सीता

भगवान राम का राज्याभिषेक होनेवाला था। लेकिन न जाने जानकीनाथ प्रभाते किं भविष्यति। जानकीनाथ भगवान रामचन्द्र भी नहीं जानते कि सुबह क्या होनेवाला है। वे यदि नहीं जानते तो हम तो क्या जानेंगे ? लेकिन हम टेन्इयर प्लान वनाते हैं। हमसे कुछ होनेवाला नहीं। यह सव कागज में रहेगा। आप प्लान वनाते जाइये। लेकिन होना आपके हाथ में नहीं। होनहार तो कोई अलग ही है। न जाने जानकीनाथ प्रभाते किं भविष्यति। राम का राज्याभिषेक होनेवाला था। सवको मालूम था। लोग राज्याभिषेक के उत्साह में थे, लेकिन राम को वन में जाना पड़ा। भगवान राम जानकी को कहते हैं, जानकी

तो यहाँ की ही है, यह मिथिला नगरी है। यहाँ ही जनक हुए थे। तो भगवान रामचन्द्र जानकी को कह रहे हैं—तुम यहाँ रहो। माँ की और श्वसुर की सेवा करो हम बारह वर्ष में जल्दी ही वापस आते हैं। भगवान के लिए बारह वर्ष तो दो सेकेंड जैसे थे। लेकिन मजे की बात यह है कि सीता सिर्फ गृहणी, या धर्मपत्नी नहीं थी। वह तो भक्त थी। भगवान ने गीता में चार प्रकार के भक्त बताये हैं। उसमें से सीता आर्त्त भक्त थी। सीता को रावण ले गया और हनुमान राम की मुद्रिका लेकर सीता की खोज में जाते हैं। पहचान के लिए सीता के सामने मुद्रिका रखते हैं। सीता मुद्रिका को हाथ में लेती है और रोती है, कहती है—ये मुद्रिके राम की सेवा छोड़कर तुम यहाँ कैसे आई? मुझे तो यहाँ मजबूरन आना पड़ा। तुमको तो रावण यहाँ उठाकर लाया नहीं। तब भी भगवान रामचन्द्र की सेवा छोड़कर, उनके हाथ की शोभा छोड़कर यहाँ आने का खराब कर्म तुमसे कैसे हुआ? माता सीता के ये उद्गार हनुमान जी सुनते हैं और तभी माता सीता की भक्ति का परिचय मारुति को मिलता है। सीता आर्त्त भक्त थी।

ज्ञानी भक्त : लक्ष्मण

लक्ष्मण की बात भी वैसी ही है। भगवान रामचन्द्र ने लक्ष्मण को कहा—तुम माता की सेवा करो और अयोध्या में रहो। मेरी सेवा तो सीता करेगी ही। तुम फिक्र मत करो। लक्ष्मण ने कहा—मैं आपसे अलग ही नहीं तो यह बात कैसे सोच सकते हैं। यदि मैं अलग होता तो मुझे ले जाना या नहीं ऐसी बात होती। लेकिन जहाँ एक ही है वहाँ

ऐसा कोई प्रश्न ही नहीं आता। लक्ष्मण नित्ययुक्त थे। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ। तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते॥ लक्ष्मण नित्ययुक्त थे।

अर्थार्थी भक्त : भरत

और भरत अर्थार्थी भक्त थे। अर्थ माने व्यवस्था। व्यवस्था की वात आती थी तो भगवान रामचन्द्र भरत को कहते थे। अयोध्या में रहकर राज्य करने की वात व्यवस्था रखने की वात भगवान रामचन्द्र ने भरत को कही। क्योंकि वे अर्थार्थी थे।

जिज्ञासु भक्त : शत्रुघ्न—राम पंचायतन

और शत्रुघ्न तो जिज्ञासु थे ही। इस तरह राम पंचायतन में राम तो भगवान ही थे। सीता आर्त भक्त थी, शत्रुघ्न जिज्ञासु थे, भरत अर्थार्थी थे और लक्ष्मण ज्ञानी नित्ययुक्त थे। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ। इन चारो भक्तों का वर्णन रामायण में आता है। योगमार्ग में, भक्तिमार्ग में सहायक हो इस तरह की भक्ति भगवान ने वताई।

अष्टम अध्याय : सातत्य मार्ग

भक्त के चार प्रकार भगवान ने वताये। यह सव योगमार्ग की पूर्ति के लिए भगवान कह रहे हैं—भक्ति की अपूर्वता तो वाद में आयेगी ही। इसकी वातें हम कल करेंगे। इतना किया तो भी सतत भक्ति में नहीं लगेंगे तो योगमार्ग सिद्ध नहीं होगा। आठवें अध्याय में भगवान दो मार्ग वताते हैं। एक है अर्चिरादि मार्ग और दूसरा है धूम्रमार्ग।

हमेशा मेरा स्मरण करके सातत्य योग टिकाना यह आठवें अध्याय का सार भगवान कहना चाहते हैं। विनोवा जी ने आठवें अध्याय को सातत्य योग ऐसा नाम दिया है। साधना में यदि सातत्य रहा तो अर्चिरादि मार्ग से हम स्थिर रहेंगें और सातत्य नहीं टिका तो धूम्रमार्ग में जायेंगे। योग सिद्धि नहीं होगी।

इस तरह छठे, सातवें, आठवें अध्याय में भगवान ने ध्यानयोग का विकर्म बताया। यह योगमार्ग को दिखानेवाला विकर्म है। चित्त संशोधन करना चाहिए, आगे बढ़ना चाहिए, आत्मोद्धार करना चाहिए। यह सब सामान्य बात नहीं। भक्ति की बात भगवान आगे कहेंगे। लेकिन यहाँ योग की बात, मन, बुद्धि, शरीर की बात, मन को कैसे स्थिर रखना, बुद्धि को कैसे समत्व में रखना, सिर्फ युक्ताहार-विहार से नहीं चलता यह बात भगवान कह रहे हैं। वही सबके कल्याण का मार्ग है। हमको तो सबका कल्याण ही देखना है और हर रोज हम प्रार्थना करते ही हैं—वैसी ही प्रार्थना करके आज का प्रवचन समाप्त करेंगे।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात् ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

★

अध्याय ९, १०, ११, १२

सर्वोदय गीता-यज्ञ के अवसर पर महर्षि शिवाजी भावे का प्रवचन दिनांक:–२३–९–६३–स्थान—दरभंगा।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतःस्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै–
र्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः॥

पूर्वाध्याय समालोचन (१ से ८)

भगवान के श्रीमुख से अर्जुन ने आठ अध्याय तक अध्यात्म ज्ञान सुन लिया, अमृतपान किया। ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र, स्थितप्रज्ञ यह सब अर्जुन ने बहुत एकाग्रता से सुना। बाद में कर्मयोग के बारे में उसको शंका आई, वह भी उसने समझ लिया। खुद भगवान ने अर्जुन को योग-परंपरा और ज्ञान-परंपरा बतलाई। उस पर अर्जुन ने प्रश्न पूछा और हमारे सामने अवतार रहस्य स्पप्ट हुआ। अवतार रहस्य में सहायभूत ऐसे कर्म–विकर्म और अकर्म उसका भी स्पष्टीकरण भगवान से सुना। गुरुशरणता का महत्व सुना। कर्मयोग और संन्यास में फर्क नहीं है। दोनो एक ही राह है यह भी सुना। जीवन मुक्त का वर्णन भगवान के मुख से सुनकर अर्जुन प्रसन्न हुआ। छ से लेकर सातवें और आठवें

अध्याय तक योग तत्त्व का भगवान ने स्पष्टीकरण किया और अर्जुन ने सुना। अब अर्जुन को शंका आती है कि योगाभ्यास यदि टूट गया, शरीर-शक्ति बीच में से ही टूट गई, यदि मृत्यु हो गया तो की हुई साधना भी नष्ट हो गई क्या ? इस अर्जुन के संशय का जवाब देते हुए छठे अध्याय के अन्त में भगवान कहते हैं कि योग साधना कभी नष्ट नहीं होती। योग साधना बढ़ती ही जाती है और योगभ्रष्ट आदमी नया जन्म जब लेता है तब पूर्व साधना से अपूर्व ज्ञान उसको प्राप्त होता है।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्। एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ ऐसा जन्म दुर्लभ है। योगी की साधना मृत्यु से नष्ट नहीं होती। योग साधना दूसरे जन्म में भी मिलती है और वे शंकराचार्य ज्ञानेश्वर जैसे पुरुष जगत को ज्ञान देते हैं, जगत का कल्याण करते हैं। इस श्लोक का वर्णन करते हुए महाराष्ट्र के बड़े संत ज्ञानेश्वर महाराज ने लिखा है—मगतये सिद्ध प्रज्ञे चेनि लाभे। मनचि सारस्वत दूभे॥ जब योगभ्रष्ट का जन्म होता है तो उसके मन में वेद ज्ञान भरा हुआ रहता है। उसके मुख से सारे शास्त्र सहज ही निकलते हैं। पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः। जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते॥ शब्द ब्रह्म माने वेद। उससे परे ज्ञान को वह पाता है। माने वेद से परे ज्ञान को वह पाता है। फिर सातवें अध्याय में योग में सहायक चतुर्विध भक्ति की बात कही। आठवें अध्याय में दो मार्ग कहे—और भगवान का सतत् स्मरण करने को कहा—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।

परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन ॥

अगर भगवान का चिंतन सतत् करते रहते हैं, भगवान का स्मरण मन में सतत् रहता है तो योगसातत्य रहता है। फिर आदमी अर्चिरादि मार्ग से आगे बढ़ता है। वह पीछे नहीं आता। इस तरह का योगमार्ग, ध्यान मार्ग भगवान ने बताया।

नवम अध्याय की विशेषता

आज नवमें अध्याय में भगवान राजविद्या राजगुह्य कहते हैं। भगवान ने खुद ही इसकी स्तुति की है। भगवान कहते हैं—

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम ।

प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥

यह विद्या पवित्र है, उत्तम है और प्रत्यक्ष मालूम होती है। यह धर्मयुक्त है, गुह्य है, सूक्ष्म है और सबको दिखाई दे ऐसी स्थूल भी है। यह नवम् अध्याय भक्ति योग का मुख्य अध्याय है, आगे भक्ति की परिणति होती है। ब्रह्मविद्या में जो सूक्ष्मता होती है वह भी इस राजविद्या राजगुह्य में है और कर्मयोग में जो स्थूलता होती है वह भी इसमें है। स्थूल और सूक्ष्म से यह विद्या परिपूर्ण है। इसलिये इस अध्याय को विशेष महत्व दिया जाता है।

समूचे महाभारत के मध्य में गीता है और गीता के मध्य में यह नवम् अध्याय है। इसलिये ज्ञानदेव महाराज ने जब समाधि ली उनके आसपास सब सज्जन लोग, महाराष्ट्र के बड़े-बड़े संत लोग इकट्ठे हुए थे। ज्ञानेश्वर ने सबको कहा—अब मैं समाधि लेता हूँ। जगत में मेरा

जो कार्य था वह पूर्ण हुआ इसलिये समाधि लेता हूँ। ऐसा कहकर अन्त में उन्होंने इसी अध्याय का पाठ किया और वे ब्रह्मरूप में लीन हुए। इतना महत्व गीता में इस अध्याय का है।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥

इसमें स्थूलता भी है और सूक्ष्मता भी है। ब्रह्मविद्या की सूक्ष्मता इसी में है और कर्मयोग की स्थूलता इसीमें है। जैसे दूध में शक्कर मिल जाती है तो दूध का भी स्वाद आता है और शक्कर का भी आता है वैसे इस राजविद्या राजगुह्य में सूक्ष्मता और स्थूलता दोनों मिलते हैं। इसीलिये एकनाथ स्वामी ने गाया है—

गुरु कृपांजन पायो मेरे भाई, गुरु कृपांजन पायो।
जागत राम, सोवत राम सपने में देखो राजा राम॥

जागृति में वही और स्वप्न में भी वही। जब देखो तब राम ही राम।

अन्तर राम, बाहिर राम जहाँ देखो वहाँ राजा राम।

योग शास्त्र में अन्दर देखना पड़ता है। बाहर से विषयों को, इन्द्रियों को अन्दर खीचना पड़ता है। इन्द्रियों के विषय बन्द करने पड़ते हैं। वैसे राजविद्या का नहीं। उसमें तो अन्तर राम बाहिर राम जहाँ देखो वहाँ राजा राम। जहाँ देखो वहाँ, अन्दर देखो या बाहर देखो राम ही राम दिखाई देता है। यह उपयोगी दृष्टि है। इस अध्यात्म ज्ञान में ब्रह्मविद्या की सूक्ष्मदृष्टि है। इसलिये भगवान कहते हैं—स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यान्ति परां गतिम्। इसमें सबके लिए सब मार्ग खुल जाते हैं, कोई कठिनाई रहती नहीं।

राजविद्या राजगुह्य
अहल्याबाई सदृश

इन्दौर की एक कहानी हमें याद आ रही है। अहिल्यावाई इन्दौर की मशहूर रानी हो गई। उसका जन्म कोई बड़े घराने में नहीं हुआ था। सामान्य कुटुंब में उसका जन्म हुआ था। लेकिन वह राजकुल में ब्याही गई थी। औरंगावाद जिले के देहात में एक पटेल के यहाँ उसका जन्म हुआ था। उस जमाने में तो बच्चे-बच्चियाँ छोटी उम्र में ही ब्याह किये जाते थे। भरतपुर की एक लड़ाई में उनके पति यशवंतराव मारे गये। समूचे इन्दौर का कारोवार दस-पन्द्रह साल की अहिल्यावाई के हाथ में आया। करीवन वीस करोड़ रुपये का वह कारोवार था। उस जमाने के वीस करोड़ रुपये का कारोवार था। यह दृश्य एक अपूर्व ही दृश्य था। एक राज्य का कार्यभार एक लड़की देख रही है। मराठा के मुख्य सरदार पेशवा को हुआ कि ये छोटी लड़की, ये विधवा राज्य चला रही है। हम उसका राज्य हड़प सकते हैं। रघुनाथ राव शूरवीर थे। उन्होंने तहेनात में सेना देकर हमला करने की तैयारी की। इन्दौर में अहिल्यावाई को यह मालूम हुआ। उसने स्त्रियों की एक पलटन तैयार की और दो-तीन स्त्रियाँ आगे रघुनाथ राव के पास भेजी गई। उन स्त्रियों के साथ अहिल्यावाई ने एक पत्र भी भेजा था। जिसमें उसने लिखा था—आपलोग अन्याय से हमारा प्रान्त हड़प लेना चाहते हैं। मैं स्त्री हूँ तब भी स्त्रियों की पलटन लेकर आपके सामने लड़ाई के लिए आऊँगी। यदि हमारी हार होगी तो कोई हर्ज ही नहीं क्योंकि लड़ना यह हमारा धंधा नहीं। लेकिन आपकी हार होगी तो आपको साड़ी और

चूड़ियाँ पहननी पड़ेगी। इसके लिए पहले से ही मैं साड़ी और चूड़ियाँ भेज रही हूँ। रघुनाथ राव शर्मिदा हो गये अहिल्यावाई से माफी माँगी और वहाँ से ही वापिस लौट गये। अहल्यावाई ने स्त्री के जो सूक्ष्मगुण है वह भी बताये और पुरुषों के धैर्यशौर्यादि स्थूल गुण भी बताये। भगवान ने स्त्री के सूक्ष्म गुणों का दसवें अध्याय में वर्णन किया है। कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा। इन दोनों गुणों का सामंजस्य अहिल्यावाई ने किया। वैसे ही राज्यविद्या राजगुह्य में दोनों का, स्थूलता का और सूक्ष्मता का सामंजस्य होता है। इसलिये गीता का यह अध्याय महत्व का माना जाता है।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥

यह करने के लिए सुलभ है लेकिन सूक्ष्म भी है और स्थूल भी है। इसलिये भगवान ने अर्जुन को भक्तिमार्ग का उपदेश देना शुरू किया।

राजविद्या राजगुह्य
भक्तियोग सब के लिये

ज्ञानदेव और बड़े-बड़े संत इस अध्याय का बहुत उपकार मानते हैं। ज्ञानदेव कहते हैं कि वेद भी इस अध्याय के पास कुछ नहीं। वेद ने भी स्त्री-वैश्य को मुक्ति नहीं दी। जबकि स्त्रियो वैश्याः कह करके स्त्री-वैश्य को भी मुक्ति दे दी। इतना ही नहीं लेकिन अपिचेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति। कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति। पापी भी मुक्त होता है ऐसा भी इस अध्याय में

कहा है।—"जाती जिधर को नजरिया हमारी उधर देखता हूँ मैं सूरत तुम्हारी।" राजविद्या राजगुह्य में जहाँ देखो वहाँ भगवान ही भगवान दिखाई देते हैं। वहाँ पाप कैसे आ सकता है। अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।। क्षिप्रं भवति धर्मात्मा—तुरंत ही वह धर्मात्मा बनता है। सिर्फ साधू नहीं वह धर्म का आत्मा बनता है। "जाती जिधर को नजरिया हमारी—उधर देखता हूँ मैं सूरत तुम्हारी।" जहाँ हम देखते हैं, अन्दर देखते हैं तो भी भगवान और बाहर देखते हैं तो भी भगवान। अन्दर-बाहर सब जगह भगवान ही भगवान है। यह भगवान की लीला का वर्णन है। भागवत में भगवान की लीला का वर्णन आता है। लेकिन अनपढ लोग उसको कैसे पढ़ेंगे? तो यह बाहर जो दिखाई पड़ती है वही भगवान की लीला रहती है। यह दृष्टि रहती है तो कहाँ भी पाप या पापी रहता नहीं। गुजराती कवि ने कहा है—ज्यां-ज्यां नजर मारी फरे यादी भरी छे आपनी, धोवा बुराईने बधे गंगा वहे छे आपनी। जहाँ-जहाँ देखता हूँ आपका ही स्मरण होता है और यह सब जगत का पाप धोने के लिए, आपकी स्मृति गंगा बहती रहती है। यह भगवान की स्मृति गंगा है। आगे कवि कहते हैं—हुँ बुराइने डरूँ ना शी फिकर छे पापनी धोवा बुराइने बधे गंगा वहे छे आपनी। सब तरह की बुराई को धोने के लिए भक्ति जैसा दूसरा कोई साधन नहीं। कवि कहता है—मैं बुराई से डरता नहीं। मुझे पाप की क्या फिक्र है। जहाँ आपकी स्मृतिगंगा पाप धोने के लिए बहती रहती है।

अपि चेत् सुदुराचारो : देवेन्द्रनाथ की कहानी

राजविद्या राजगुह्य का अनुभव रविन्द्रनाथ के पिता जी देवेन्द्रनाथ को आया था। वे बड़े भक्त थे। कलकत्ता से सौ मील की दूरी पर वे रहते थे। वहाँ से हर रोज वे टहलने के लिए जाया करते थे। दूर जाकर वे एकान्त में बैठते थे। प्रभु का स्मरण ध्यान धारणा वगैरह करते रहते थे। एक दिन वे ऐसे ही टहलने के लिए गये थे। ध्यान करने बैठे तो उनको गहरा ध्यान लग गया। ध्यान में वे लीन हो गये तो समय का उनको खयाल नहीं रहा। रोज ध्यान करके वे वापिस आते थे। लेकिन आज समय का कुछ भी ख्याल उनको नहीं रहा। रात हुई तारे चमकने लगे। लेकिन उनको कुछ भी खबर नहीं। वे तो समाधिस्थ थे। मजे की बात यह थी कि उसी जगह डाकू और चोर आकर अपने माल का बटवारा किया करते थे। भगवान की माया है कि जो एक का ध्यान की जगह है वह दूसरे की चोरी का माल बटवारा करने की जगह है। यह आश्चर्य की बात है। रात को बारह–एक बजे चोर डाकू वहाँ आ रहे हैं। उनको दूर से कोई आदमी बैठा हो ऐसा दिखाई देता है। उनको लगता है कि यह आदमी हमको पकड़ने के लिए ही बैठा है। ऐसा सोचकर हाथ में छूरी लेकर वे उनके पास जाते हैं। तो भी देवेन्द्रनाथ का ध्यान भग्न नहीं हुआ। ध्यानमग्न ऋषि जैसे वे बैठे थे। डाकू ने जब यह देखा तो उसने अपनी छूरी फेंक दी और देवेन्द्रनाथ के चरण पकड़े। तब उनको कुछ भान आया। वे बोले कौन हो, क्या बात है ? चोर कहने लगे हम बड़े पापी हैं, ये माल आपके चरणों में

हम रखते हैं। देवेन्द्रनाथ को आश्चर्य लगा। आस-पास देखा तो मालूम हुआ कि रात हो गई थी। घर को जाने में बड़ी देर हो गई। चोरों ने कहा—आप हमारे गुरु बनिये। हमको आप शिष्य बनाइये। देवेन्द्रनाथ जी को तो यह कुछ मालूम नहीं था। उनको यह सब आश्चर्य लग रहा था। वे बोले मैं गुरु नहीं हूँ। तो आपको शिष्य कैसे बना सकता हूँ। जो भगवान का ध्यान करता है उसको पाप वगैरह का कोई भी डर नहीं। चोरों ने अपनी बात देवेन्द्रनाथ जी को बताई और पश्चात्ताप किया। भगवान की माया है वे अच्छे रास्ते पर आये। उनको ही अपने गुरु माने और आखिर तक चोर उनका उपदेश लेते रहे।

भक्ति से हृदयपरिवर्त्तन : नालागिरी-अंगुलिमाल

मतलब भक्ति मार्ग में—अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥—कहा है। अन्दर बाहर भगवान ही भगवान है। उसके सामने चोर भी अपना धंधा छोड़ देते हैं। ऐसी तो कई बातें हमारे भरतखंड में हुई है। भगवान बुद्ध ने जब राजगृह में प्रवेश किया तब उनके विरोध में उनको नष्ट करने के लिए उनके सामने शराब पिलाकर पागल हाथी नालागिरी छोड़ा गया। हाथी तो उन्मत्त था, पागल था। सबके पीछे वह दौड़ने लगा। सबको हैरान करने लगा। भगवान के पास जब वह आया तो घुटने टेक कर बैठ गया। जो भगवान के शरण रहता है, जो भगवान का भक्त रहता है उसके सामने जगत बदलता है। आजकल हम समाज परिवर्तन की बातें करते

हैं। लेकिन हमारा खुद का परिवर्तन हम करते नहीं। परोपकार दूसरों पर उपकार करने के लिए जाते हैं। पहले खुद पर ता उपकार करें। हृदय परिवर्तन की वातें—वड़ी वातें हैं। अच्छी मंशा है। वड़ा ध्येय है। लेकिन पहले खुद के हृदय को परिवर्त्तित करना चाहिये।

अन्दर वाहर भगवान ही भगवान होता है तो हमारे में परिवर्तन होता है। लेकिन हमारे पास भक्ति तो होना चाहिये। दूसरों का परिवर्तन करना—माने दूसरों की कमी देखना, यह ठीक नहीं। हमको दूसरों के गुण देखना चाहिये। तो यह सामर्थ्य आयेगा। परिवर्तन के लिए भक्ति नहीं होगी तो कुछ नहीं होगा। भक्ति स्वयंभू है। वह प्रतिक्रियात्मक नहीं। प्रतिक्रियात्मक वातें टिकती नहीं। आजकल सवलोग प्रतिक्रियात्मक वातें ही करते हैं। उनको अपना कुछ इनिसियेटिव नहीं है।

बुद्ध भगवान की वात कही, देवेन्द्रनाथ की वात कही। वैसी तो कई कहानी भरतखंड में हुई है। भगवान बुद्ध ने अंगुलीमाल का परिवर्तन किया। कहा जाता है—अंगुलीमाल वड़ा लुटेरा था और जितने लोग जाते थे उनकी कत्ल करके उनकी अंगुलियों का हार पहनता था। इसलिये उसको अंगुलीमाल कहा जाता था। भगवान बुद्ध भी एकवार उस रास्ते से निकले। अंगुलीमाल भगवान को मारने के लिए आया। लेकिन उसका हथियार ही उठा नहीं। भक्त के सामने डाकू लोग, चोर लोग टिक नहीं सकते। वाद में अंगुलीमाल भगवान बुद्ध का शिष्य हुआ और हाथ में भिक्षापात्र लेकर भिक्षा माँगने लगा। लोगों को मालूम था कि यह चोर था, ठग था, इसलिये उसको भिक्षा नहीं देते थे और

जोर से पीटते थे हैरान करते थे। लेकिन यह सब अंगुलीमाल ने सहन किया। उतना परिवर्तन उसमें हो गया था। कहलानेवाले साधू भी इतना सहन नहीं कर सकते जितना अंगुलीमाल ने किया। आखिर उसको मोक्ष मिला। इस तरह की अनेक घटनायें हमारे वांगमय में मिलती है। अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

भक्ति के लिये अर्जुन का विभूतिकथन प्रश्न

भगवान का सामर्थ्य अर्जुन ने सुना। अन्तर्बाह्य भक्ति से परिपूर्ण होना यह सरल बात नहीं। इसके लिए भी साधना चाहिये। इसलिये अर्जुन भगवान को कहता है—आपने सब जगह गुण दर्शन करने की, भगवत दर्शन करने की बात बताई यह तो ठीक है। लेकिन साधना के लिए कुछ ऐसी विभूतियाँ बताइये जिससे कि भक्ति मार्ग में हम आगे बढ़ सकें। यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्। जो जो क्रिया करते हैं वह सब आपको अर्पण करे यह बात तो ठीक है, लेकिन सरल मालूम नहीं होती। अर्जुन ऐसा कह रहा है—जिसकी भक्ति भी असामान्य थी। उसकी भक्ति, सख्य भक्ति थी। उसके आगे तो आत्म-निवेदन ही आता है। तब भी वह भगवान को ऐसा कह रहा है—पत्रं पुष्पं फलं तोयं—यह ज्यादा बात नहीं। हरेक क्रिया अर्पण करना है। बड़ी क्रिया न भी हो छोटी क्रिया हो तो भी अर्पण करना है—इसमें भी हमको कठिनाई मालूम होती है और दसवें अध्याय में वह भगवान को कहता है—

केषु-केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ।।
विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि श्रृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ।।

धीरे-धीरे एक-एक विभूति ध्यान में आती है तो भगवान के गुण हम समझ पाते हैं। बाद में अन्दर भगवान, बाहिर भगवान देख सकते हैं। अन्दर बाहिर भगवान का स्मरण कर सकते हैं। भगवानमय होना बाद में शक्य हैं।

केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ।।
विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथयं तृप्तिर्हि श्रृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ।

विभूतिः भगवद्गुण चिंतन—अपने अवगुण दूर करना

उसको भगवान ने कहा—ठीक है मैं मरी विभूति कह रहा हूँ।

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ।।

हे अर्जुन, मेरी विभूति का विस्तार हो नहीं सकता। क्योंकि विभूति में तुमको क्या-क्या बताऊँ और क्या-क्या छोड़ूँ। कौन-कौन से गुण तुमको कहूँ? इसकी गिनती क्या हो सकती है। विभूतियों के विस्तार का अन्त हो नहीं सकता। और भगवान की विभूति जानना मतलब भगवान के बड़े-बड़े गुण देखना जिससे कि हमारे अवगुण कम हो। प्रभु मोरे अवगुण चित न धरो—हे प्रभु मेरे अवगुण आप चित्त में मत लीजिये। ऐसे तो किसी के भी अवगुण भगवान मन में नहीं रखते। अपेक्षा है कि

हम भी दूसरे के अवगुण न देखें। विभूति का चिन्तन करना है तो अवगुण कम करना होगा। गुण दर्शन इसलिये जरूरी होता है।

प्रभु मोरे अवगुण चित्त न धरो।
समदर्शी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो।
प्रभु मोरे अवगुण चित्त न धरो।

प्रभु भक्तों के अवगुण देखता ही नहीं। लेकिन भक्तों को चाहिए कि वह भगवान के गुण देखें। इसलिये विभूतियोग का स्पष्टीकरण अर्जुन ने भगवान के पास सबके लिए करवाया है। भगवान पहले ही कहते हैं—अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः। अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ।। पहले ही भगवान ने कहा—विभूतियोग में सब जगह मैं आत्म तत्त्व हूँ। यह पहली विभूति ही सबसे बड़ी विभूति है। सब जगह आत्मा को देखना चाहिए। उपनिषद में कहा है—आत्मानं वै विजानथ अन्यावाचां विमुंचथ—आत्मा को जानो और सब छोड़ो। मैक्समूलर ब्रह्मवादिन् नाम का एक मैगजिन निकालता था। उसका आदर्शवाक्य मोटो उसने यही उपनिषद्वाक्य रखा था। अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः। अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ।। सबसे बड़ी विभूतियाँ भगवान पहले कहते हैं। हरेक में आत्मा को ही देखना यह सबसे बड़ी विभूति है। भगवान आगे कहते हैं आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्। मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ।। ज्योतियों में सूर्य और नक्षत्रों में चन्द्र हूँ। मतलब कि भगवान की विभूति तरह-तरह की है। उद्धवगीता में भी इन विभूतियों का वर्णन आता है। चन्द्र और सूर्य माने—भरतखंड के दो वंश। हमारे यहाँ दो

वंश हो गये एक सोमवंश और दूसरा सूर्यवंश। सूर्यवंश में भगवान राम का जन्म हुआ। ज्ञान की परंपरा सूर्य ने ही चलाई। इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहम् अव्ययम्–पहले भगवान ने सूर्य को योग कहा—ऐसी ज्ञान परंपरा का वर्णन भगवान चौथे अध्याय में कर रहे हैं। मतलब सूर्य माने ज्ञान की प्रतिमा। दूसरा वंश है सोम वंश, चन्द्रवंश। जिसमें भगवान कृष्ण का जन्म हुआ। सोम–माने प्रेम। प्रेम और ज्ञान यह भगवान की विभूति है यही इस श्लोक का सार है। आगे भगवान कहते हैं स्थावराणाम् हिमालयः यहाँ हिमालय की उच्चता सिर्फ स्थूल उच्चता नहीं है, जड़ उच्चता नहीं है। उसकी उच्चता आध्यात्मिक उच्चता है। मतलब यह कि भगवान के गुणों को ग्रहण करना चाहिए। और हमारे अवगुणों को छोड़ना चाहिए।

मानव में भगवान् की अवगणना

यहाँ हमको फिर नवम् अध्याय में वापस जाना है। नवम् अध्याय में भगवान कहते तो हैं कि मेरी भक्ति अन्दर–बाहर से करनी चाहिए। लेकिन एक शिकायत भी भगवान करते हैं। वे कहते हैं—अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्। परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥ भगवान की यह सबसे बड़ी शिकायत है। मनुष्य शरीर में ही भगवान की अवगणना होती है। उसकी पूजा तो छोड़िये, सेवा तो छोड़िये लेकिन सब के बारे में अवजानन्ति मां मूढा होता है। विभूतियोग का चिन्तन करके भगवान के गुणों को देख करके अपने अवगुणों को हमें नष्ट करना है। भगवान को कहाँ देखना है—भगवान को मानव में

देखना है। लेकिन मानव रूप में ही भगवान की अवगणना होती है। क्योंकि,—

अतिपरियात् अवज्ञा, संतत गमनादनादरो भवति।
मलये मिल्ल पुरन्ध्री चन्दनतरु काष्ठमिंधनम् कुरुते॥

अति परिचय के कारण भगवान के मानव रूप की हम अवगणना करते हैं। चन्दन की मूर्त्ति हो, पत्थर की मूर्ति हो तो हम उसकी पूजा करते हैं, उसको पत्र पुष्प-फल देते हैं। लेकिन हमारे सामने कोई गरीब आदमी रहता हो तो उसको हम भगवान मानकर उसकी सेवा, उसकी मदद नहीं करते। क्योंकि मानव रूप में भगवान की अवगणना करते हैं, अतिपरिचयात् अवज्ञा करते हैं। इसलिये भगवान को कहना पड़ा—अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्। मेरी अवगणना मानव रूप में होती है। लेकिन सबसे बड़ा दर्शन तो मानव रूप में ही करना चाहिए। क्योंकि जो पास में हो उसकी अवगणना करना भक्तिमार्ग का खंडन है। पत्थर की मूर्ति में हम भगवान की सेवा करते हैं, भगवान ही मान लेते हैं। लेकिन भगवत्त सेवा मानव सेवा हम नहीं करते। नरनारायण की सेवा हम नहीं करते।

भगवान् का मानवसेवा दर्शन

मानव सेवा की राजविद्या राजगुह्य के लिए भगवान का खुद का उदाहरण है। मथुरा में जाकर भगवान ने कंस का वध किया। मथुरा के लोग भगवान को कहने लगे अब आप यहाँ रहिये और यहाँ का राज्य चलाइये। भगवान ने कहा—मैं राज्य नहीं लूँगा। दीन जनों की सेवा

यही मेरा काम है। मैं मथुरा के पास में रहना नहीं चाहता। क्योंकि पास में रहने से भी दीन लोगों की, आदिवासी लोगों की मेवा होगी नहीं। यहाँ रहने से मथुरा के राजकर्त्ता लोग हमारे पास आयेंगे और हमसे सलाह-मशविरा करते रहेंगे और हम दीन दुःखी की सेवा नहीं कर पायेंगे। वैसे तो गोकुल भी हमारा प्यारा है। हमने वचपन वहाँ ही गँवाया है। लेकिन वहाँ रहने से भी राजकर्त्ता लोग आते रहेंगे। इसलिये वे अपने वालगोपाल को कहते हैं—'चलो रे, गोपालो हम दूर दूर दूसरे देश में जायेंगे।' गोपाल पूछते हैं—कहाँ जायेंगे भगवन। भगवान कहते हैं—हम सौराष्ट्र में जायेंगे। उस समय वहाँ सव जंगल ही जंगल था। अभी भी वहाँ का गीर जंगल प्रख्यात ही है। भगवान ने कहा—चलो हम वहाँ जायेंगे। गाँव की सेवा करेंगे, आदिवासियों की सेवा करेंगे और ग्राम राज्य की स्थापना करेंगे। कहाँ मथुरा, वृन्दावन और कहाँ सौराष्ट्र इतनी दूर कैसे जायेंगे ऐसा वालगोपालों ने पूछा। भगवान ने गुजराती में ही उसका जवाव दिया। गुजरात में जाकर रहे तो वे गुजराती ही बने। उन्होंने उत्तर दिया—आपणे ते देश केवा, आपणे विदेश केवा, आपणे प्रवासी पारावारना होजी। अपना देश क्या और पराया देश क्या—आपणे ते देश केवा, आपणे विदेश केवा—हम तो अनन्त के प्रवासी हैं। सेवामार्ग में, भक्तिमार्ग में देश विदेश नहीं आता। उसमें तो स्वदेशोभुवनत्रयम् रहता है। आपणे विदेश केवा, आपणे ते देश केवा—हमको तो सेवा करने के लिए जाना है। आखिर भगवान और कुछ वाल गोपाल सौराष्ट्र में गये। वहाँ का सव जंगल उन्होंने साफ किया और भगवान ने द्वारका वसाई। द्वारका का अर्थ भी वैसा ही है।

द्वारका माने स्वर्ग द्वार, गेट वे ऑफ दी हेवन। वहाँ कुछ भी नहीं था। भगवान ने लोगों की सेवा की और द्वारकापुरी वसाई। पास में ही पोर वंदर है जहाँ महात्मा गांधी का जन्म हुआ। वहीं सुदामापुरी है, जहाँ सुदामदेव रहते थे। शान्दीपनी के आश्रम में भगवान और सुदामदेव दोनों इकट्ठे रहते थे। लेकिन भगवान के पास मानवसेवा की राजविद्या राजगुह्य था जिसकी गुह्यता से वे जनता को सुखी समृद्ध कर सके। सुदामदेव ब्रह्मविद्या जानते थे लेकिन मानव सेवा का उनको ख्याल नहीं था। इसलिये वो दरिद्र ही रहे। उनके घर में दरिद्रता इतनी थी कि वच्चों को खाने पहनने के लिए भी कुछ नहीं मिलता था। उनकी पत्नी ने एक दिन उनको कहा—आपके मित्र तो भगवान हैं वड़े सुखी और समृद्ध हैं उनके पास जाकर कुछ माँगकर लाइये। सुदामदेव ने उत्तर दिया मित्रता प्रेम के लिए होती है माँगने के लिए नहीं। उनकी स्त्री चतुर थी। उनको लगा प्रेम के लिए जायेंगे तव भी वड़े लोगों के पास से प्रेमोपायन में भी वहुत कुछ मिलता है। उनकी पत्नी ने सुदामदेव को कहा—ठीक है आप प्रेम के लिए भी जाइये। सुदामदेव ने कहा—अच्छा है। वहुत समय से भगवान से मिले नहीं। कुछ वातें हुई नहीं। अव भगवान से मिला जाय, प्रेम वार्तालाप किया जाय। उन्होंने सोचा अव जाना ही है तो भगवान के पास कुछ लेकर ही जाना चाहिये। जैसे वे खुद जंगल में रहते थे वैसी ही कल्पना उन्होंने भगवान की की थी। जंगल में रहनेवाले जंगली जैसे ही भगवान रहते होंगे ऐसा सोच करके उन्होंने अपनी पत्नी को कहा—अच्छा है हम जायेंगे, लेकिन प्रेमोपायन में कुछ ले जाना चाहिए। पत्नी ने कहा—अपने घर में तो

कुछ भी नहीं है। वाहर से यहाँ–वहाँ से भीख मांगकर वह चूड़ा लाई ग्रौर कपड़े में वाँधने लगी। वस्त्र भी इतना फटा-पुराना था कि वहुत सी गाँठें लगाईं तव वाँधा जा सका। सुदामदेव ने चलना प्रारम्भ किया। उनमें चलने की ताकत भी नहीं थी। ग्रन्न विना कैसे चला जाय। जैसे-वैसे वे द्वारिका में ग्राये तो द्वारिका को देखकर ग्राश्चर्यचकित हो गये। द्वारिका के लोगों को भी यह कोई विचित्र ही प्राणी लगा। लोग उनको भूत-प्रेत-पिशाच मानने लगे। सुदामदेव भगवान के महल के पास ग्राये ग्रौर ग्रन्दर जाने लगे तो द्वारपाल ने कहा—ग्ररे कहाँ जा रहे हो ? सुदामदेव ने कहा—मुझे भगवान के पास जाना है। द्वारपाल ने कहा—भगवान के यहाँ भूत-प्रेत-पिशाचों का रहना नहीं होता। किस काम के लिए भगवान के पास जा रहे हो। सुदामदेव ने कहा—कुछ काम नहीं है। प्रेम के लिए जा रहा हूँ। द्वारपाल ने सोचा ऐसे काम के विना जानेवाला यह कोई पागल ही होगा। ग्राजकल भी हम काम के विना मिनिस्टरों के पास नहीं जा सकते। प्रेम से यदि जाते हैं तो वे लोग हमें पागल समझते हैं। पूछते हैं—कुछ काम है तो बातें करो। कवि लोग वच्चों का वर्णन करते हैं। वच्चे कहीं भी जाते हैं तो काम के विना जाते हैं। सहज ही जाते हैं। हम उसको पूछते हैं—क्यों, कैसे ग्राये ? तो कहते हैं ऐसे ही खेलने को ग्राये। उनके जीवन में मजा रहती है। वड़े लोग ग्राते हैं तो कुछ कारण से ही ग्राते हैं। लेकिन वच्चे के पास कारण का भी कारण महाकारण रहता है। भगवान की लीला है कि वच्चे किसी कारण से नहीं ग्राते, प्रेम के लिए ग्राते हैं। हाँ, तो सुदामा ने कहा हम इतने कमजोर हैं फिर भी इतनी दूरी

से आये हैं। हमको अन्दर नहीं जाने देते तो कुछ नहीं, लेकिन भगवान को संदेशा पहुँचाइये कि सुदामदेव आये हैं। भगवान को संदेशा पहुँचाया गया और जैसे ही भगवान ने सुना—वे पागल बन गये। लोग सोचते रहे—एक पागल ने भगवान को भी पागल बनाया। भगवान बहुत जोर से उनकी ओर दौड़ने लगे। उनका मुकुट भी गिर गया। उत्तरीय वस्त्र भी गिर गया। उनकी पत्नियाँ, नौकर, सेवक वगैरह तो देखते ही रहे कि भगवान को क्या हुआ है ! आखिर भगवान बाहर गये और सुदामदेव को आलिंगन दिया। अपने साथ ऊपर ले आये और सिंहासन पर बिठाये। उनके चरण प्रक्षालन करने लगे। सबको आश्चर्य हुआ कि भगवान यह क्या कर रहे हैं। भगवान ने सुदामा की षोडसोपचार पूजा की। उनको खिलाया–पिलाया और बाद में पूछने लगे और सब तो ठीक लेकिन आप हमारे लिए क्या लाये हैं। सुदामदेव ने तो इस स्थान को अपने प्रदेश जैसा गरीब ही माना था, लेकिन अब इतना ऐश्वर्य देखकर उनको शर्म आने लगी। षडगुणेश्वरी भगवान को चूड़ा कैसे दिया जाय। वे अपना चूड़ा छिपाने लगे। भगवान ने गठरी खींच ली और खोल करके खाने लगे। कहने लगे यह तो अमृत जैसा मधुर है। अमृत भी इसकी तुलना में कुछ नहीं। आप ज्यादा क्यों नहीं लाये ? रूकमिनी माता जी वहाँ ही खड़ी थीं। उन्होंने सोचा यह भक्ति का प्रेम का प्रसाद है तो हमको भी मिलना चाहिये और भगवान को कहा—हमारे लिए भी आप थोड़ा सा रखें। बाद में सुदामदेव कुछ दिन भगवान के पास रहे। उनका कुछ वार्तालाप भगवान से हुआ। थोड़े दिन के बाद वे जाने लगे। उनके मन में विचार आया—भगवान ने हमारा

चूड़ा तो खाया, प्रशंसा तो की लेकिन एक छोटी सी चीज भी हमको नहीं दी। भगवान उनको पहुँचाने के लिए थोड़े दूर गये और उनसे मानव सेवा, मिट्टी का सोना कैसे बनाना वगैरह बातें की। विनोबा जी ने भी पदयात्रा में श्रमदान चलाया है। लोग श्रमदान करते हैं और गाते रहते हैं—भाई कुदाली चलाते चलो, मिट्टी का सोना बनाते चलो। मानव सेवा की, मिट्टी का सोना बनाने की बातें सुदामदेव ने सुनी और उसी विचार में वे धीरे धीरे आगे चले। अपने गाँव में आते हैं तो वहाँ एक भी झोपड़ी नहीं है। सब झोपड़ियाँ गायब हो गई। और द्वारका नगरी ही वहाँ आ गई। सुदामदेव सोचने लगे मैंने रास्ता तो गलत नहीं लिया क्या ? यह सब क्या चमत्कार है ? चमत्कार कुछ नहीं था, लेकिन जो उनके मन में था, जिसका वे चिन्तन करते थे वही उनको बाहर दिखाई देता था। झोपड़ियाँ तो वैसी ही थी। लेकिन उनकी मानव झोपड़ियाँ सोने की बनी थी। इसलिये बाहर की झोपड़ियाँ भी सोने की दिखाई देती है। मतलब यह कि वे मानव सेवा करने लगे और सुदामपुरी की स्वर्ण नगरी हुई।

कवि कहते हैं—कि भगवान ने सुदामपुरी को स्वर्णपुरी बनाया। लेकिन भगवान ने तो सुदामदेव को मानव सेवा से स्वर्णपुरी कैसे बना सकते हैं इसकी दृष्टि दी।

गाँव की सेवा : नारायण सेवा

नारायण भाव से मानव की सेवा करनी चाहिए। हम गाँव-गाँव जाते हैं लेकिन कहेंगे कि गाँव का कूड़ा-कर्कट हमें साफ करना है, गाँव की तरक्की हमें करना है, मतलब यह कि हमारी दृष्टि नारायणस्वरूप की

पूजा करने की नहीं होती। नारायण सेवा की दृष्टि हम नहीं रखेंगे तो कामयाव नहीं होंगे, द्वारका नहीं बनेगी। विवाद ही चलेगा। आज जहाँ-तहाँ अनवन ही दिखाई देती है। इसका कारण है कि लोगों में भक्ति नहीं। बुद्धि से ही वे काम करने जाते हैं। तर्क से ब्रह्मज्ञान तो नहीं ही मिलता, लेकिन दुनियाँ का काम भी नहीं होता।

अर्जुन की इच्छापूर्ति : विश्वरूप दर्शन

अर्जुन ने चाहा तो भगवान ने विभूति योग कहा—मानव सेवा की बातें की। अर्जुन भगवान का भक्त और सखा है इसलिये उसको जो-जो इच्छा होती है भगवान पूर्त्ति करते हैं। भगवान ने विभूतियाँ बताई। मानव सेवा बताई लेकिन अर्जुन कहता है कि मानव सेवा के लिए विश्वरूप दर्शन चाहिए। भगवान तो माता जैसे हैं। माता बालक की जो-जो इच्छा रहती है उसकी पूर्त्ति करती है वैसे ही भगवान अर्जुन की जो-जो इच्छा होती है उसकी पूर्त्ति करते हैं—एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः। दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्॥ भगवान ने अपना दिव्य रूप, परम ईश्वरीय रूप अर्जुन को बताया। भगवान छोटे थे, यशोदा माता जी भगवान को छोटा बच्चा ही मानती थी और छोटे बच्चे की तरह ही यह मिट्टी खाता है ऐसा मानती थी। भगवान ने मिट्टी खाई भी थी। सर्वरूप भगवान के ही हैं तो बच्चे का स्वरूप भी भगवान का क्यों न माना जाय? डाक्टर कहते हैं कि बच्चों में कैल्सियम की कमी रहती है इसलिये बच्चे मिट्टी खाते हैं। भगवान ने मिट्टी खाई यह देखकर यशोदा माता ने कहा—मुँह खोलो। तब

उनको क्या दिखाई देता है ? भगवान के मुंह में विश्वरूप दर्शन दिखाई देता है। वैसा ही विश्वरूप दर्शन अर्जुन को भगवान दिखाते हैं।

विश्वरूप दर्शन परिणाम : निरहंकारता

तब अर्जुन को लगता है—मैं तो कितना नाचीज हूँ, कितना छोटा हूँ ऐसा सोचकर भगवान का स्तवन करता है। वो कहाँ प्रभु अगम अपारा अरु कहाँ तू मुग्ध गँवारा। ग्यारहवें अध्याय में भगवान विश्वरूप दर्शन कराते हैं। हम कहाँ और भगवान कहाँ। दोनों की तुलना की कोई बात ही नहीं हो सकती।

वो कहाँ प्रभु अगम अपारा अरु कहाँ तू मुग्ध गँवारा,
जल पर जमीन ठहरा के आसमां अधर लटका के,
सब नियमित रहे चला के कई कोटि कोस से दूर,
चमक रहा नूर हुकुम के द्वारा—वो कहाँ प्रभु अगम अपारा ॥

विश्वरूप देखते ही अर्जुन ने देखा कि मैं तो कुछ भी नहीं हूँ और उसके अहंकार का चूर-चूर हो गया। उसके अहंकार का निरसन हो गया। अहंकार का दुर्गुण जबतक हम में से नहीं जाता तबतक मानव सेवा हमसे होती नहीं।

वो कहाँ प्रभु अगम अपारा अरु कहाँ तू मुग्ध गँवारा,
जिनके गुण रवि सकारे शशि वायु अग्नि सितारे,
षड्‌ऋतु और वन सारे.......

ऐसे भगवान का दर्शन करके, विश्वरूप दर्शन करके अर्जुन का अहंकार चूर-चूर हो गया। उसको लगा भगवान के पास मैं तो कुछ

नहीं, मैं तो एक नाचीज हूँ । भगवान ही सब कुछ हैं मैं कुछ नहीं —ऐसा भाव जब आता है तब भक्ति का आरंभ होता है ।

वो कहाँ प्रभु अगम अपारा अरु कहाँ तू मुग्ध गँवारा,
पृथ्वी अदि पत्र बनाये सागर दावात हो जाये,
वन वृक्ष के कलम चलावे गुण लिखते पार न पाये ।—वो कहाँ
असीत् गिरि समंस्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्र मुर्वी ।
लिखति यदि गृहित्व शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानाम् ईश पारं न याति ॥

हे भगवान शारदा यदि सुरतरुवर की शाखा को लेखनी बनाकर पृथ्वी को कागज बनाकर हमेशा लिखती रहे तब भी तेरें गुण का पार नहीं होता । ऐसे अद्भुत भगवान के गुण जो सुनने से तृप्ति ही नहीं होती । महात्मा गांधी ने कहा है— 'इस अध्याय को पढ़ते ही रहें ऐसा लगता है । पढ़ने के बाद तृप्ति कभी भी नहीं होती और इसको बन्द किया जाय ऐसा नहीं लगता ।'

अर्जुन प्रार्थना : विश्वरूप दर्शन सार

अर्जुन भगवान का इस विश्वरूप दर्शन करके कुछ घबड़ाया । क्यों नहीं घबड़ायेगा ? दुनियाँ के स्थल-काल सबकुछ इकट्ठे किये जायें, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते तो दुनियाँ को पहचानना मुश्किल हो जायगा और हम घबड़ा जायेंगे । अद्वैत की कल्पना हम कर

सकते हैं। अद्वैत की कल्पना में निर्गुण निराकार है लेकिन यह विश्वरूप दर्शन में तो सगुण साकार है। अर्जुन क्या-क्या देखता है और क्या क्या नहीं ! वह पानी देखता है, वृक्ष देखता है। नदी, समुद्र, आसमान, तारे का स्वर्ग पाताल क्या देखता है क्या नहीं। वह आँखें बन्द कर देता है। लेकिन आँखें बन्द करता है तो अन्दर भी विश्वरूप दर्शन होता है। विश्वरूप दर्शन तो अन्दर भी है और बाहर भी है। सब जगह वही दर्शन है। अर्जुन घबराया और प्रार्थना करने लगा कि हे भगवन मुझे आप अपना पूर्व रूप ही दिखलाइये। अर्जुन की प्रार्थना से भगवान ने विश्वरूप का उपसंहार किया और अर्जुन को कहा—मेरा यह अद्भुत रूप सबको देखने को नहीं मिलता। देव भी इस रूप को देखने की हमेशा इच्छा रखते हैं। और आखिरी श्लोक में भगवान अर्जुन को कहते हैं।—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥

जब विश्वरूप दर्शन होता है तब आदमी नम्र बनता है और मत्कर्मकृत मत्परमों की स्थिति उसको प्राप्त होती है। भगवान की ओर ही उसकी सब वृत्तियाँ जाती हैं। सब भूतों के बारे में वह निर्वैर होता है तभी राजविद्या, राजगुह्य सिद्ध होता है। मानव रूप में भी ईश्वर का दर्शन करना चाहिए। उसकी अवगणना नहीं करनी चाहिये। मत्कर्मकृत मत्परमो—यह ग्यारहवें अध्याय का आखिरी श्लोक है और शंकराचार्य ने अपने भाष्य में कहा है कि यही गीता का सार है।

सगुण निर्गुण भक्त

अब भगवान भक्ति का निर्गुण और सगुण वर्णन कर रहे हैं। अर्जुन तो दूध पीनेवाला दूध खींचनेवाला वत्स है। पार्थो वत्स सुधि भोक्ता दुग्धं गीतामृतम् महत्। अर्जुन दूध पीनेवाला है तो भगवान को पूछता रहता है। अब वह भगवान को पूछता है कि आपके सगुण और निर्गुण दो प्रकार के भक्त है, उसमें से श्रेष्ठ कौन है ? दो में से कौन श्रेष्ठ यह प्रश्न कुछ उलझन में डालनेवाला है। भगवान को दोनों ही प्रिय होते हैं। भगवान अर्जुन को कहते हैं कि दो में से कौन सा भक्त श्रेष्ठ है यह पूछने के पहले तुम भक्त तो बनो और इसलिये भक्त के लक्षण भगवान बारहवें अध्याय में कहते हैं।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ।।

ऐसा कहकर के भगवान बारहवें अध्याय की समाप्ति करते हैं। भक्ति मार्ग का यह सुधा मधुर रस मानव जीवन का रहस्य खोल देता है। नव से बारह अध्याय तक भगवान ने राजविद्या राजगुह्य बतलाया और आखिर में कहा—भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः। भगवान को भक्त कितने प्रिय होते हैं यह तो उनके लीला चरित्र से मालूम होता है।

एकबार भगवान ध्याननिमग्न थे। उद्धव भगवान की ओर जाने लगे। द्वारपाल ने कहा—अभी आप जा नहीं सकते भगवान पूजा कर रहे हैं। उद्धव जी सोचने लगे कि हम भगवान की पूजा करते हैं, लेकिन यह भगवान किसकी पूजा करते हैं। भगवान का भी कोई भगवान होता है क्या ? ऐसा सोचकर वे शोकाकुल हुए। उद्धव और माधव की जोड़ी

द्वारका में प्रख्यात थी ही। उद्धव जी इतनी देर के लिए भी भगवान का वियोग सहन नहीं कर सके। उन्होंने फिर से द्वारपाल को कहा। द्वारपाल ने कहा—भगवान पूजा करते हैं। अभी अन्दर कैसे जा सकते हैं? भगवान पूजा करते हैं, यह सुनना उद्धव को बहुत ही विचित्र लगा। थोड़ी देर में भगवान बाहर आये और उद्धव जी का शोकाकुल मुख देखकर उनको पूछने लगे—क्यों रे उद्धव, तबियत तो ठीक है न? उद्धव जी ने कहा—तबियत तो ठीक है लेकिन आपकी कृपा हम पर ठीक नहीं। आप हमको ठग रहे हैं। भगवान ने कहा—कैसे, क्या मैं ठग रहा हूँ? उद्धव जी ने कहा—आप पूजा करते हैं। मतलब यह कि आप भगवान नहीं हैं और हमको कहते हैं कि मैं भगवान हूँ। आप पूजा करते हैं तो दूसरा भी कोई भगवान होगा। भगवान हँस पड़े और उद्धव जी के कंधे पर हाथ रखकर कहा—तुम्हारी बात सच है। हमारे भगवान के भी भगवान होते हैं। भक्त यही हमारे भगवान हैं। इसलिये हे उद्धव, मैं तुझे ठगता नहीं। भगवान भक्त की पूजा नहीं करेगा तो और किसकी करेगा। तेरे बिना मुझे और कोई प्रिय नहीं। भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः। बारहवें अध्याय का कोई भाष्य नहीं हो सकता। बारहवाँ अध्याय तो अपूर्व अध्याय है। भगवान ने भक्तिमार्ग का विवरण सबके सामने और आपके सामने भी सबके हित के लिए किया। भगवान से और आप सबसे हम हर रोज यही प्रार्थना करते हैं कि—

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात्॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

★

अध्याय १३, १४, १५

सर्वोदय गीता-यज्ञ के अवसर पर महर्षि शिवाजी भावे का प्रवचन
दिनांक:—२४—९—६३—स्थान—दरभंगा।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुत:स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः॥

पूर्वयोग समालोचन

भगवान ने अर्जुन को द्वादश अध्याय तक जो बातें सुनाई, जो तत्त्व बतलाये उसमें एक तत्त्व बतलाने का रह गया। यह भगवान तेरहवें अध्याय में बताते हैं। भगवान ने ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। योगशास्त्र का, ध्यानयोग का, भक्तियोग का उपदेश दिया। ब्रह्मविद्या का मुख्य तत्व एकता रहता है। एकत्व, अद्वैत यह ब्रह्म विद्या का रहस्य है। योगशास्त्र का माने कर्म-योग का रहस्य निष्कामता में है। ध्यानयोग का रहस्य एकाग्रता में है। एकाग्रता यह ध्यानयोग का मूल तत्व है। भक्तियोग का रहस्य समग्रता, यह भक्तियोग का मुख्य तत्व है। ९, १०, ११ और १२ वें अध्याय में भक्तियोग का वर्णन आया।

ज्ञान में पृथक्करणत्व
अन्न वस्त्र का उदाहरण

अब जो तत्व बाकी था वह पृथक्करणात्मक ज्ञान भगवान कह रहे हैं। वे कह रहे हैं—

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।

एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ।।

यह शरीर क्षेत्र है और उसको जाननेवाला क्षेत्रज्ञ है। इस तरह का पृथक्करणात्मक ज्ञान भगवान कह रहे हैं। ज्ञानमार्ग में पृथक्करणता, विवेक आता है। ब्रह्मविद्या में एकत्व आता है। भक्तिमार्ग में समग्रता आती है। ध्यानयोग में एकाग्रता आती है और कर्मयोग में निष्कामता आती है।

इस दुनियाँ में पृथक्करण है इसलिये हम जी सकते हैं। यदि हमको भोजन करना है तब भी त्याज्य और ग्राह्य के बारे में सोचना पड़ता है। पहले तो हम खेत में से धान्य लाते समय योग्य भाग लाते हैं और अयोग्य छोड़ देते हैं। बाद में जो अनाज रहता है उसमें भी कठोरता रहती है तो मृदुलता लाने के लिए उसको पीसते हैं। माने कठोरता का त्याग और मृदुलता का ग्रहण करते हैं। आगे उस आटे में जीवन मिलाकर, पानी मिलाकर गोला तैयार करते हैं। उसमें भी निराकारत्व का त्याग करते हैं और साकारत्व का ग्रहण करते हैं। तब भी वह गोला कच्चा है, उसको खा नहीं सकते, बेल करके पकाते हैं। तब उसके कच्चेपन का त्याग करते हैं और पक्वता लाते हैं। मतलब पक्वता का ग्रहण करते हैं। वैसे विवेक से काम करना पड़ता है। जैसे ध्यानयोग में एकाग्रता चाहिए, भक्तियोग

में समग्रता चाहिये वैसे ज्ञानयोग में विवेक चाहिए। भगवान तेरहवें अध्याय में यही कह रहे हैं।

जैसे अन्न में योग्य ग्रहण करना और अयोग्य छोड़ देना, यह वात आती है, वैसे ही वस्त्र का भी है। आपके यहाँ तो वस्त्र के वड़े-वड़े केन्द्र हैं। मधुवनी और कपसिया में काफी मात्रा में वस्त्र वनाये जाते हैं। कपास तो आपके यहाँ नहीं होता। कपास में भी योग्य ग्रहण करना पड़ता है और अयोग्य छोड़ना पड़ता है। उसके विना हमारा नहीं चलता। कपास को खेत में से लाते हैं तव—अच्छी-अच्छी कपास लाते हैं और खराव छोड़ देते हैं। वाद में उसमें से विनौला निकाला जाता है। यह पृथक्करणत्व की प्रक्रिया है। उसके वाद कपास में धुनाई होती है वाद में पूनी होती है। पूनी हुई इसका मतलव यह कि निराकारता का त्याग किया और साकारता को ग्रहण किया। उसमें से सूत निकाला जाता है। मतलव कि स्थूलता का त्याग किया और सूक्ष्म रूप का ग्रहण किया। वाद में उसको साइजिंग करना पड़ता है—मांडी देनी पड़ती है। फिर करघे में ताना-वाना लगाया जाता है। तव वस्त्र तैयार होता है। एक-एक ग्रहण करना और एक-एक अलग करना पड़ता है।

क्षेत्र क्षेत्रज्ञ गौणमुख्य विवेक : विवेकानन्द की कहानी

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का पृथककरणत्व तेरहवें अध्याय के पहले श्लोक में ही आता है। यह दोनों क्या है, वह समझना होगा। उसमें से त्याज्य क्या है और ग्राह्य क्या है यह देखना होगा। सांख्यतत्वज्ञान का विचार

यहाँ आता है—क्षेत्र ध्यान में लेना है, उसमें से ग्रहण क्या किया जाय यह देखना है। विवेकानन्द एक सन्यासी के तौर पर अमेरिका गये थे। उनको किसी ने आमन्त्रण तो नहीं दिया था। वहाँ सर्व-धर्मपरिषद होनेवाली है ऐसा उन्होंने सुना था। धर्म के बारे में कुछ कहा जाय ऐसी उनकी इच्छा थी। लेकिन उनको किसी का आमंत्रण नहीं था। वे तो वैसे ही गये थे। किसी का सहारा नहीं था। संन्यासी हमेशा निराश्रय ही रहता है। उसको एक बड़ा आश्रय है और वह है भगवान। वे तो किसी देश के प्रतिनिधि के तौर पर नहीं गये थे। उनको सर्व धर्मपरिषद में कौन ले जाय? हिन्दुस्तान में से कुछ जैन और बौद्ध साधू यहाँ के प्रतिनिधि होकर गये थे। आखिरकार एक आदमी ने विवेकानन्द जी की उस परिषद के अध्यक्ष के साथ मुलाकात करवा दी और विवेकानन्द सर्वधर्मपरिषद में गये। वहाँ तरह-तरह के वक्ता अपने धर्म के बारे में बोल रहे थे। विवेकानन्द की बारी आई तो बाद में बोलूँगा—ऐसा कहकर उन्होंने टाल दिया। बोलना तो उनको था ही। आखिर थोड़े समय के बाद जब फिर उनको कहा गया, वे बोलने के लिए खड़े हुए। उनके संबोधन ने ही लोगों को आकृष्ट किया। विवेकानन्द ने वहीं के रिवाज छोड़ा और सम्बोधन में कहा—अमेरिका के मेरे भाइयो और बहनो—ऐसा सम्बोधन तो अमेरिका में करते नहीं। वहाँ तो मिस्टर प्रेसिडेन्ट, लेडीज, जेन्टिलमैन—ऐसा सम्बोधन करते हैं। वहाँ के लोगों को यह नया सम्बोधन सुनकर आश्चर्य हुआ और कुछ आरिजिनालिटी इसमें देखी। लेकिन इसमें कुछ भी ओरिजनल नहीं था, हमारे देश में भाइयो और बहनो ऐसा कहते ही हैं। विवेकानन्द ने अमेरिका का नाम

उसमें जोड़ दिया। वहाँ के लोगों को यह नई बात लगी और बाद में विवेकानन्द का अच्छा स्वागत किया गया। सम्बोधन करने के बाद वे ज्यादा कुछ तो बोले नहीं। सिर्फ आधा घंटा बोले। उसमें उनके खुद के अनुभव का और उनके गुरु राम-कृष्ण के अनुभव का निचोड़ था। उससे ही उनको काफी चेतना आई और वे आधे घंटे में भी सर्वश्रेष्ठ मालूम हुए। बोलकर वे बैठ गये उनको मालूम ही नहीं था कि वे सर्वश्रेष्ठ बोले हैं। दूसरे दिन सुबह जब उन्होंने अखबार में देखा तो मालूम हुआ। बाइरन कवि ने कहा है—वन फाईन मोरनिंग आइ रोज एन्ड फाइन्ड माईसेल्फ फेमस। यह वाक्य विवेकानन्द के लिए सच्चा निकला। अबतक उनको ईश्वर का ही सहारा था अब हजारों लोग उनके पास जाने लगे और कहने लगे आप हमारे पास आइये, हमारे घर में रहिए और हमको पावन करिये। ऐसे ही एक आदमी विवेकानन्द को बुलाने के लिए आया था। विवेकानन्द उनके यहाँ गये। वह सामान्य घर नहीं था। वह तो सुन्दर महल था। भोजन वगैरह किया और रात को विवेकानन्द सोने के लिए गये। सोने की व्यवस्था तो बहुत ही अच्छी थी, लेकिन विवेकानन्द को नींद नहीं आई। वे रात भर सोचते रहे मैं यहाँ धर्मकार्य के लिए आया हूँ कि सुख-सुविधा के लिए? मेरे कई देशबान्धव दरिद्रता में सड़ रहे हैं और मैं कैसे भोग-विलास में रह सकता हूँ?—ऐसे ही विचार में उनको रात भर नींद नहीं आई। दूसरे दिन सुबह वह आदमी आया और पूछने लगा—नींद तो ठीक आई न? विवेकानन्द जी को कहना पड़ा नहीं, नींद नहीं आई। उस आदमी ने पूछा क्या हमारे इन्तजाम में कुछ कमी थी?

विवेकानन्द जी ने कहा—इन्तजाम में तो कोई भी कमी नहीं थी। सबकुछ ठीक था, लेकिन मुझे नींद नहीं लगी इसका कारण यह है कि मुझे विचार आते रहे कि मेरे कितने देश-बान्धव दरिद्रता में हैं और मैं कैसे सुख-सुविधा से रह सकता हूँ? अमेरिका में रहकर भी वे हमेशा भारत के लिए सोचते रहे। वे सोचते थे कि जियेंगे तो भी भारत के साथ, रहेंगे तो भी भारत के साथ और मरेंगे तो भी भारत के साथ।

वैसे तेरहवें अध्याय में क्षेत्र को, कार्य को, मुख्य माना है। क्षेत्र को चिपकना यह मुख्य बात नहीं। इसी गौणमुख्यविवेक के लिए विवेकानंद की कहानी याद आयी क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत। क्षेत्र-क्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ।। इस क्षेत्र में हमें क्या करना है, यह मुख्य बात है। क्षेत्र में फल होते हैं, धान्य होता है, फूल होते हैं, लेकिन हमें क्या करना है, यह मुख्य बात है। क्षेत्र में हार्टीकल्चर कर सकते हैं, एग्रीकल्चर कर सकते हैं। इस देह में हम आये हैं तो यह कौन है इसको पहचानना यह मुख्य बात है। ज्ञान यह मुख्य बात है।

अमानित्वादि ज्ञानगुण

आश्रमानुसार

इसलिये ज्ञान के गुण भगवान कह रहे हैं। अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्। आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।। इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च। जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ।। असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु। नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ।। मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी। विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जन-

संसदि ।। इस क्षेत्र में से क्षेत्रज्ञ को पृथक करके क्या ज्ञान ग्रहणकरना चाहिए यह भगवान ने साफ किया है। ग्रमानित्वमदम्भित्वम् ऐसा कह करके ज्ञान के गुण भगवान ने बताये है। खेत में खेती करना है तो मिट्टी पानी, हवा वगैरह को देखकर खेती करना पड़ता है। वैसे ही देह रूप क्षेत्र में अवस्था को देखकर ज्ञान के गुण विकसित करने होते हैं। बाल्यकाल में देह एक तरह का होता है, जवानी का देह दूसरी तरह का होता है, वृद्धावस्था का देह तीसरी तरह का होता है और जीर्णावस्था में तो देह बिलकुल बदल जाता है। देश काल परिस्थित रूप लक्षण बदलते रहते हैं, बदलने पड़ते हैं। लेकिन ब्रह्मचर्याश्रम में हैं तो—ग्रमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् । ग्राचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।। —ये गुण लाने पड़ते हैं। ग्रमानित्व, अदम्भित्व, ग्रहिंसा, क्षान्ति वगैरह ब्रह्मचर्याश्रम के गुण हैं।

ग्रमानित्व : उदाहरण— विद्यासागर, भिस्कोमा

ज्ञान का पहला गुण ही ग्रमानित्व है। बंगाल के ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ग्रमानित्व की मूर्ति थे। एकबार रामकृष्ण परमहंस उनको मिलने के लिए गये। रामकृष्ण ने कहा—ग्रबतक हमने नदी देखी है, तालाब देखे हैं, नाले देखे हैं, लेकिन ग्राज सागर का दर्शन हो रहा है। इस तरह से रामकृष्ण ने उनके नाम से उनकी स्तुति की। विद्यासागर ने कहा—जी हाँ यह तो सागर है। इसमें से चाहिये तो ग्रापको खारा जल ही मिल सकता है। रामकृष्ण ने कहा—नहीं ग्राप लवण का सागर नहीं ग्राप तो विद्या के सागर हैं। इस तरह की मीठी गोष्ठी दोनों महापुरुषों की हुई।

विद्यासागर सीधे-साधे आदमी थे । लेकिन वे काफी मशहूर थे । उनको मिलने के लिए कई लोग आते रहते थे । एक बार एक प्रोफेसर ने उनको लिखा कि मैं इस-इस ट्रेन से आपको मिलने के लिए आ रहा हूँ । वह दिन आया और विद्यासागर उनको लेने के लिए स्टेशन पर गये । बिल्कुल हमाल जैसा पहनाव उन्होंने पहना था । गाड़ी आई और विद्यासागर जी को कुली समझकर इस प्रोफेसर ने बुलाये और कहा—ये सामान विद्यासागर के यहाँ ले जाना । विद्यासागर जी ने सामान उठाया । उनके ही घर पर जाना था । उनको घर तो मालूम था ही, वे प्रोफेसर को ले गये । घर के पास पहुँचकर प्रोफेसर उनको पैसे देने लगे । विद्यासागर जी ने वे पैसे लिये नहीं । प्रोफेसर ने कहा—पैसे कम पड़ते हैं क्या ? तुम कुली लोगों को कितना पैसा दिया तब भी खुश नहीं होते । विद्यासागर जी ने कहा—जी नहीं हमको एक भी पैसा नहीं चाहिये । हम पैसे की दृष्टि से काम नहीं करते । प्रोफेसर घर के अन्दर जाने लगा और पूछा विद्यासागर जी कहाँ हैं । उस कुली जैसे व्यक्ति ने कहा—मैं ही विद्यासागर हूँ । प्रोफेसर को एकदम आश्चर्य हुआ । उसने कहा—आप विद्यासागर हैं क्या ? कुछ भी यकीन नहीं होता कि आप विद्यासागर हैं । आप हर्गिज विद्यासागर नहीं हो सकते । प्रोफेसर ने उनकी माँफी माँगी । हमाल तो अविद्यासागर रहता है, ऐसी ही सब की कल्पना है । विद्यासागर के रोम-रोम में अमानित्व था । अमानित्व के अभाव में दूसरे गुण भी दोष रूप बनते हैं ।

यह वार्ता कही तो दूसरी भी एक वार्ता हमें याद आ रही है । सिखों के गुरु अर्जुनदेव के पास एक आदमी गया और उसने कहा

कि मुझे कुछ पैसे की जरूरत है। पैसे दीजिये। अर्जुनदेव ने कहा—हमारे पास तो पैसे नहीं लेकिन आपको लाहौर से जरूर पैसे मिल सकते हैं। उस आदमी ने कहा—हमारे पास पैसे ही नहीं तो लाहौर कैसे जायेंगे। अर्जुनदेव ने कहा—कैसे भी आप जाइये, यदि आपको पैसा चाहिये तो। वहाँ ही आपको पैसे मिलेंगे। उस आदमी की लड़की की शादी थी। कुछ दो-चार सौ रुपये उनको चाहिए था। वे अर्जुनदेव को अपने गुरु मानते थे। गुरु का शब्द मानना ही चाहिए। उस आदमी की उनपर श्रद्धा भी थी। उसने पूछा लाहौर जाकर भी मैं कैसे पैसे पाऊँगा ? गुरु ने कहा—वहाँ मिस्किमा नाम का बड़ा पहलवान है, वह कुस्ती में प्रवीण है। उसको कुस्ती में हराकर आप पैसे पायेंगे। वह आदमी हँसने लगा और कहने लगा—मिस्कीमा तो मशहूर कुस्तीबाज है। अभी का जैसे गामा पहलवान है वैसे उस समय में मिस्किमा था। मैं उससे कैसे लड़ूं ? मिस्किमा का नाम वैसे तो ज्यादा जाहिर नहीं था लेकिन गुरु अर्जुनदेव के कारण उनका नाम सिख्ख साहित्य में अमर हो गया। वह आदमी कहने लगा मैंने तो कभी कुस्ती की नहीं। किसी को गिराया नहीं। कुस्ती देखी है जरूर उससे कुस्ती करना थोड़े ही आता है। मैं जाकर मिस्किमा के साथ लड़ूँ यह तो विचित्र बात है। गुरु अर्जुनदेव ने कहा—मैं कहता हूँ वैसे करो तुम्हारा कल्याण होगा। वह आदमी तो श्रद्धा रखकर लाहौर गया। मिस्किमा के कुस्ती के खेल में गया। एक के बाद एक आदमी को मिस्किमा गिरा रहा था। अन्त में मिस्किमा ने आवाहन किया—चैलेन्ज दिया और कोई लड़ने के लिए तैयार हो तो आ सकते हैं। गुरु के शब्द पर ध्यान रखकर वह आदमी

खड़ा हुआ। मिस्किमा के सामने उसका शरीर कहाँ ? उसका शरीर देखकर सबलोग तालियाँ वजाने लगे। मिस्किमा ने उस आदमी को पास बुलाकर कहा—तुमने कभी कुस्ती की है क्या ? बात क्या है ? क्यों कुस्ती के लिए आये हो ? उस आदमी ने कहा—मैंने कुस्ती की तो नहीं, लेकिन देखी है जरूर। मिस्किमा ने कहा—मेरी एक चपेट में ही इतनी ताकत है कि न सिर्फ गिर जाओगे वल्कि मर जाओगे। उस आदमी ने कहा—मुझे तो कुछ आता नहीं। गुरु अर्जुनदेव ने मुझे भेजा है। मिस्किमा ने पूछा तुमको किस लिए गुरु ने भेजा है। गुरु अर्जुनदेव पर मिस्किमा की भी अप्रतिभ श्रद्धा थी। उस आदमी ने उत्तर दिया मुझे कुस्ती करने के लिए गुरुदेव ने भेजा है। मिस्किमा ने पूछा यह हो नहीं सकता। तुम तो मशहूर कुस्तीवाज नहीं। कुस्ती के लिए तुमको गुरु कैसे भेजेंगे ? उस आदमी ने उत्तर दिया—मुझे पैसे चाहिए इसलिये गुरुदेव को मैंने कहा और उन्होंने आपके साथ कुस्ती करने को कहा। मिस्किमा सबकुछ समझ गया और दोनों की कुस्ती हुई। कुस्ती में मिस्किमा खुद व खुद गिर गया और उस आदमी की जीत हुई ऐसा जाहिर किया। मिस्किमा में अमानित्व था इससे वह अमर हो गया। वह गिरा लेकिन गिरकर भी सिख्ख साहित्य में अमर रहा। अमानित्व और गुरु पर श्रद्धा अद्वितीय थी। गुरु पर की श्रद्धा से क्या नहीं होता।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः॥

उसको अमानित्व के वाद तरह-तरह के गुण ब्रह्मचर्याश्रम में सिद्ध

करने होते हैं। चार अवस्था के मुताबिक चार श्लोक दिये हैं। यह कोई भी टीकाकार को मालूम नहीं हुआ।

आचार्योपासना उदाहरण विवेकानन्द

दूसरा गुण दिया है आचार्योपासनम्—आजकल उपासना और आचार्य का सम्बन्ध ही कहाँ है? कः केन सम्बन्धः। कालेज में गुरु आचार्य रहते हैं, उनको विद्यार्थियों से कुछ भी संबंध नहीं। विद्यार्थियों के जीवन से, अध्ययन से कुछ भी संबंध नहीं। दिवाल के सामने देखकर वे बोलते रहते हैं और कुछ भी जिम्मेवारी उनपर नहीं। विद्यार्थी को भी कुछ जिम्मेवारी नहीं लगती। हम जैसे दूकान में जाते हैं और पैसे देकर माल खरीदते हैं वैसे प्रोफेसर दूकानदार जैसे रहते हैं। पैसे देकर उनसे विद्या खरीदी जाती है। आचार्योपासनम् की बात हम किसी विद्यार्थी से करते हैं तो वह उसके लिए हास्यास्पद बनती है।

विवेकानन्द की एक बात है। रामकृष्ण बीमार थे। वैसे तो उनके बहुत से शिष्य थे और सबलोग उनकी सेवा करते थे। लेकिन सब दूर से सेवा करते थे। उनको डर रहता था कि कहीं बीमारी हमें लग न जाय। डर के मारे वे दूर रहते थे। विवेकानन्द ने यह देखा और सोचा कि यह कोई सेवा नहीं है। सेवा तो ठीक तरह से होनी चाहिए। रामकृष्ण को कुछ गले का रोग था। कैन्सर भी हो सकता है या दूसरा कोई भी हो सकता है। रोग तरह तरह के होते हैं। डाक्टर ने आकर रामकृष्ण के गले का फोड़ा साफ किया और वह साफ किया हुआ गंदा पानी वहाँ पड़ा था। विवेकानन्द वहाँ आये और सबके सामने गंदा

पानी पी गये। वे सबको सबक सिखाना चाहते थे कि गुरु की सेवा करते समय डरने की कोई जरूरत नहीं। रामकृष्ण पर विवेकानन्द की बहुत ही श्रद्धा थी और श्रद्धा के साथ वह सेवा करते थे।

आचार्योपासनं के बिना ज्ञान मिलता नहीं। इसमें के एक-एक गुण बहुत महत्व के हैं। और इसके बारे में कहने बैठेंगे तो सारी रात बीत जायगी।

ज्ञानगुण : गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास

अब दूसरा श्लोक गृहस्था आश्रम के लिए है।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकारएव च।
जन्म मृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥

गृहस्थाश्रम में विषयों का सेवन संभव है इसलिये इन्द्रियार्थेषु वैराग्यम कहा है। दूसरा गृहस्थाश्रम में मेरा तेरा होने का भी ज्यादा संभव रहता है इसलिये अनहंकार कहा है। जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि इन सब का अनुभव गृहस्थाश्रम में ही होता है। किसी का जन्म तो किसी की मृत्यु यह सब लक्षण गृहस्थाश्रम में ध्यान में आते है। आसक्ति भी गृहस्थाश्रम में रहती है। जहाँ पुत्र नहीं वहाँ उसकी आसक्ति कैसे रहेगी ? अमानित्वं अदंभित्वम् वगैरह ब्रह्मचर्याश्रम के और गृहस्थाश्रम के लक्षण कहने के बाद भगवान वाणप्रस्थ आश्रम के लक्षण कहते हैं।

मयिचानन्य योगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥

संन्यास के लिए भगवान कहते हैं—अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थ-दर्शनम्। यह चार आश्रम के बारे में भगवान ने यहाँ कहा है। यह महत्व का विचार किसी भी टीकाकार ने नहीं कहा। विनोबा जी ने उसको स्पष्ट किया है।

पृथक्करण से ज्ञान, ज्ञान से ज्ञेय याज्ञवल्क्य की कहानी

पृथक्करण से क्या प्राप्ति होगी? पृथक्करण से ज्ञान प्राप्ति होगी और ज्ञान से ज्ञेय प्राप्ति होगी। भगवान कहते हैं—

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥

ज्ञेय, से अमृतत्व की प्राप्ति होती है। उपनिषद में एक कहानी आती है। याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थी। याज्ञवल्क्य ने संन्यास लेने का सोचा। संन्यास ग्रहण करते समय अपनी जायदाद का दो भाग उन्होंने किया। जायदाद के लिए झगड़े होते ही रहते हैं। जायदाद जिसके पास नहीं उसके लड़के क्या झगड़ेंगे? अपनी दोनों पत्नी को एक-एक विभाग देकर याज्ञवल्क्य ने कहा—मैं अब राजी खुशी से संन्यास ले रहा हूँ। आप दोनों की यह जायदाद रखी है। दो में से एक तो इस्टेट लेकर सन्तुष्ट हुई। लेकिन दूसरी इस्टेट से संतुष्ट नहीं हुई। वह पूछने लगी—यह इस्टेट से अमृतत्व की प्राप्ति हो सकती है क्या? याज्ञवल्क्य ने कहा नहीं। इससे अमृतत्व की आशा नहीं रखी जाती। अमृतत्वस्य नाशास्ति वित्तेन्। तब उस पत्नी ने पूछा यदि उस वित्त से मुझे अमृतत्व की प्राप्ति नहीं होगी तो वित्त लेकर क्या करूँ? येनाहं

नामृतास्यां किं अहं तेन कुर्याम्---इस तरह से वह पत्नी पूछ रही है। यह स्त्री जाति का सबसे बड़ा उद्‌गार उपनिषद में आया है—येनाहं नामृतास्यां किं अहं तेन कुर्याम्। ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते। ज्ञेय से अमृततत्व की प्राप्ति करना है, वह कैसे होगी ? क्षेत्र को जानना होगा क्षेत्रज्ञ को जानना होगा। उससे ज्ञान प्राप्ति होगी। ज्ञान से ज्ञेय और ज्ञेय से अमृततत्व की प्राप्ति होगी। लेकिन अमृततत्व की प्राप्ति में तरह तरह के अन्तराव आते हैं। हमारी प्रकृति सत्वरजतमात्मक है इसलिये अमृततत्व की प्राप्ति में वह बाधा उत्पन्न करती है।

चतुर्दश अध्याय गुणत्रय : रज-तम से विनाश : दो उदाहरण।

इसका पृथक्करण करना, सत्वरजतमात्मक प्रकृति को जानना यह १४ वें अध्याय का विषय है। त्रिगुणातीत हुए बगैर अमृततत्व की प्राप्ति नहीं होती। तेरहवें अध्याय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का पृथक्करण किया गया। लेकिन हमको ज्ञेय प्राप्ति होती नहीं क्योंकि प्रकृति सत्वरजतम में डालती है। इसका खयाल करना चाहिये और तम-रज का निकाल करना चाहिये। नहीं तो हम पाप में पड़ेंगे और हमारा विनाश होगा।

नेपोलियनबोनापार्ट की बात है कोई भी लड़ाई में उसका हार नहीं हुई। लेकिन वाटरलू की लड़ाई में उसकी हार हुई। क्योंकि उसके सेनापति तमोगुण और रजोगुण के थे। जर्मन सेनापति ब्लूचर हमला करने के लिए, फ्रान्स पर हमला करने के लिए आया। और दूसरी ओर से ड्युक ऑफ वैलेन्टन जो हिन्दुस्तान में थे वे इंगलिश फौज लेकर फ्रान्स के खिलाफ गये। इन दोनों का एकत्र होना ठीक नहीं था। नेपोलियन

ने सोचा इन दोनों की सेना अलग की जाय। उसका सोचना ठीक भी था। ब्रिटिश सेनापति के खिलाफ मार्सलजे नाम का सेनापति फौज के साथ भेजा गया। वह बहुत शूर-वीर था, लेकिन रजोगुणी था। उसको लोग ब्रेवेस्ट ऑफ द ब्रेव कहते थे। ब्रिटिश सेना को अटकाने के लिए उसको भेजा गया था। मार्सईल ने वैलिन्टन के सामने आया। दूसरा सेनापति ग्राउची नाम का भेजा गया। वह तमोगुणी था। एक रजो-गुणी तो दूसरा तमोगुणी। ग्राउची को ड्युक ब्लूचर के सामने जाने को कहा गया था। ब्लूचर ने छोटी सी पलटन ग्राउची के सामने रखी और दूसरी सब लेकर भाग गया। ब्लूचर ड्युक ऑफ वैलेन्टन के साथ मिल गया। दूसरा सेनापति मार्सइल ने रजोगुणी था। उसने थोड़ी सी भी सेना रिजर्व रखी नहीं और पूरी सेना लेकर वेलिन्टन के सामने युद्ध किया। परिणाम यह हुआ दोनों सेना इकट्ठी हो गई और नेपोलियन हार गया। ६-७ वर्ष नेपोलियन को कैद में रहना पड़ा। उसका नतीजा तो बहुत ही खराब आया यह इतिहास जानता है। जीत नेपोलियन की ही होनेवाली थी। लेकिन रजोगुण और तमोगुण के कारण वह हार गया।

हम भी ऐसा ही करते हैं। रजोगुण और तमोगुण को हम अपने में से एकदम निकालेंगे नहीं तो हम हारेंगे। पानीपत की लड़ाई में भी वैसा ही हुआ। सदाशिव राव अहमदसाह अब्दाली के सामने पानीपत में लड़ रहा था। अब्दाली का मोर्चा तोड़कर दामाजी राव आगे बढ़ा। लेकिन वह रजोगुणी था तो आगे बढ़ता ही गया। बड़ौदा तक वह अपने रजोगुण में पहुँच गया। मल्हार राव होल्कर ने सदाशिव राव

को कुछ भी मदद नहीं की लेकिन लड़ाई शुरू हुई तो मल्हार राव तमोगुण में रहा। एक रजोगुण में खूब लड़ा तो दूसरा तमोगुणी बैठा रहा। इस तरह पानीपत में हमारी हार हुई। वह रजोगुण और तमोगुण से ही हुई। रजोगुण और तमोगुण हमारे जीवन के काम का नहीं। उनको निकाल देना चाहिए। और सत्वगुण को रखना चाहिये।

सत्वगुण बद्धता : सुवर्ण श्रृंखला

सत्वगुण अच्छा है लेकिन वह भी आदमी को वद्ध करता है। सत्वगुण सोने की क्यों न हो लेकिन वेड़ी ही है। मराठी में एक कविता है—

सोन्याची लोखंड्याची वेड़ी ती वेड़ी च साची. वन्धनी—चाहे सोने की हो या लोहे की हो लेकिन वह वेड़ी ही है। मानो राजा ने किसी आदमी को प्राणदण्ड की सजा दी। वाद में उसको वुलाकर कहते हैं कि तुमको मारेंगे तो सही, लेकिन तुम्हारी आखिरी इच्छा ऐसी हो कि तुमको सोने की तलवार से मारा जाय तो हम तुमको सोने की तलवार से मारेंगे। अब मरना ही है तो वह आदमी लोहे की तलवार से मरे या सोने की तलवार से मरे उसमें क्या फर्क—

लखलखीत कांचने घड़ली म्हणूनी कांढिली कथीं पडली वन्धनी
प्रेमाच्या मृदु रज्जूनी वा द्वेषाच्या पाशानी वंधिले
दासा जड़ी पदी तुदविलें हस्ते वा कुरवालिले दासाचि।

ये जो वेड़ी है वह सोने की हो या लोहे की हो उसका कोई भी अर्थ

नहीं। वेड़ी तो वेड़ी ही है। चाहे हम उसको अलंकार कहें लेकिन वह बन्धन ही है।

सोन्याची लोखड्याची वेड़ी ती वेड़ी च साची वन्धनी—रज और तमोगुण को तो निकालना ही है लेकिन सत्व भी बन्धनकारक है यह ध्यान में रखना चाहिए। एक आदमी को वह निरहंकार है उसका ही अहंकार हो गया तो यह ख्याल में रखना चाहिए। सत्वगुण का बन्धन मालूम नहीं होता, इसलिये वह बड़ा बन्धन है।

सोन्याची लोखंडयाची बेड़ी ती वेड़ी च साची बंधनी—यह बंधन कैसे टूटे इसलिये अर्जुन ने भगवान को पूछा—

कैर्लिगस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतां स्त्रींगुणानतिवर्तते ॥

यह तीन गुणों से पर कैसे हो सकते हैं। सत्वगुण हमको जरूर चाहिए, लेकिन वद्धता के लिए नहीं। रज और तम गुण तो जरा भी नहीं चाहिए।

त्रिगुणातीत साधन : उदासीनता : भक्ति

कैर्लिगैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो। भगवान जवाब देते हैं—

प्रकांशं च प्रवृत्ति च मोहमेव च पांडव।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥
उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।।
मानापमानयोस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ।।

भगवान ने वहुत ही सुन्दर तरह से इसका वर्णन किया है । प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह, सत्व, रज और तम सामने आता है तो उससे आशक्ति नहीं रखनी चाहिए, यह मुख्य वात भगवान बता रहे हैं । विषय में लिप्त होना एक वात है और विषय से विरक्ति होना यह दूसरी बात है । यहाँ विराग भी नहीं और अनुराग भी नहीं । उदासीनता भगवान बता रहे हैं ।

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ।।

ऐसा कैसे रहना यह सवाल आता है । क्योंकि यह भी कोई सहज बात नहीं । इसलिये आखिर में भगवान कहते हैं—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेने सेवते । स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ।। आखिर भक्ति का सहारा भगवान वताते हैं । उदासीन कैसे रहना तो कहते हैं—पद्मपत्रमिवांमसा रहना चाहिये । ऐसा रहने की कोशिश करेंगे लेकिन पद्मपत्र तो अलग है । हम अलग नहीं तो क्या करना ? भगवान ने कहा—मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते—मेरी भक्ति करता है तो भक्ति के सहारे भगवान को प्राप्त होता है । यहाँ चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

पंद्रहवां अध्याय : वेदांत : त्रिपुरुष सर्व चेतन

पन्द्रहवें अध्याय में भगवान पुरुषोत्तम की बातें करते हैं। यह अध्याय वेदान्त का अध्याय है। इसमें क्षरपुरुष, अक्षरपुरुष और पुरुषोत्तम ऐसे तीन तत्वों की चर्चा आती है। हमारे यहाँ और पाश्चत्यों में भी एक वाद है जिसको जड़वाद कहते हैं। वे मानते हैं कि सारी दुनियां जड़ ही जड़ है। दूसरा एक वाद है जो मानता है कि दुनियां में कुछ जड़ है और कुछ चेतन है। तीसरा एक वाद है जो मानता है कि सब चेतन ही चेतन है और चेतन से भी परे चेतन है। यह वेदान्त का वाद है। इसके आगे अभीतक कोई गया नहीं। यहाँ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त होता है।

तेरहवें अध्याय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का पृथक्करण किया, ग्राह्य और त्याज्य की बातें की, १४ वें अध्याय में सत्व-रज और तम की बातें की। इस पन्द्रहवें अध्याय में सब ग्राह्य है, सब चेतन है।

पन्द्रहवों अध्याय के शास्त्र से कृतकृत्यता : शान्ति

इसी अध्याय के अन्त में भगवान कहते हैं—

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत॥

हे अर्जुन इस तरह अत्यन्त गुप्त शास्त्र मैंने तुमको कहा—इसको जानकर मनुष्य बुद्धिमान और कृतार्थ होता है। यह आखिरी अध्याय है और शास्त्र शब्द का प्रयोग करके भगवान ने यह बताया भी है—इति

गुह्यतमं शास्त्रं । इससे हमको कृतकृत्यता लगती है । यह वेदान्त का शिखर है । उसके विना हमको शान्ति नहीं । वह शान्ति कैसी है तो मराठी कवि उसका वर्णन करता है—तटिनी सम धावत येई ती शान्ति माझ्याठाद्यौ सर्वदा । नदी की तरह वह शान्ति मेरी ओर दोड़कर आ रही है । वेदान्त शास्त्र की कृतकृत्यता की यह शान्ति है । चेतनवाद का, अद्वैत का यह शिखर है । और आगे कवि को अनुभव आता है कि गंगा की तरह बहकर वह शान्ति मेरी ओर हमेशा आ रही है ।

गंगे सम वाहत येई ती शांति माझ्याठायी सर्वदा—आगे कहता है—

अब्धि सम लोडत येई ती शान्ति माझ्याठाई सर्वदा । मेरे पास शान्ति का समुद्र दौडकर आ रहा है। यहाँ इस शास्त्र को जानकर कृतकृत्यता लगती है ऐसा भगवान ने कहा है । वह कृतकृत्यता कहाँ से आती है ? वाहर से ? नहीं वाहर से नहीं ।

देहा तूनि रोमातूनि शांतता येई वाहूनि सर्वदा—देह-देह में से रोम-रोम में से यह शान्ति आ रही है। यह तो जीव और शिव का मिलन है, इसका आनन्द हो रहा है ।

वैवाहिक शेला आणूं सोनेरी ज्यावरी किरण शोभती,
सुटला से अन्तर पाट अज्ञान पटल घनडाट नासले

विवाह के समय वर-वधू को विठाया जाता है और बीच में पर्दा रखा जाता है । जीव और शिव के वीच में अज्ञान पटल है । वह अज्ञान पटल दूर हो गया और देहातूनि रोमातूनि शांतता येई वाहूनि सर्वदा—देह-देह में से रोम-रोम में से वह शान्ति आ रही है ।

वैवाहिक शेला आणूं सोनेरी ज्यावरी किरन शोभती,
सुटला से अन्तर पाट अज्ञान पटल घन दाट नासले ।

सारा अज्ञान का परदा दूर हो गया—

इति गुह्यतमं शास्त्रं इदं उक्तं मयानघ ।
एतद्‌बुद्‌ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥

कृतकृत्यता आती है । देह सिर्फ पर्दा जैसा रहता है ।

देहा चे सकल हि धर्म सृष्टि चे मूदचि कर्म चालवी,
ती अहंकार कृत करणी पेरूनि पिकाला आणि क्षेत्र हे ।

प्रकृति कर्म चलाती है ऐसा जब हम समझते हैं तब निरहंकारिता आती है । आदमी का अहंकार चला जाता है ।

उपसंहार : भारत की विशेषता वेदांत

यह आखिरी अध्याय है । आगे १६-१७ और १८ अध्याय है लेकिन वे परिशिष्ट रूप है । वह तो कल का विषय है । यही अध्याय, वेदान्त का अध्याय आखिरी अध्याय है । हिन्दुस्तान के हमलोग दरिद्र हैं । लेकिन हमारे पास कुछ देने जैसा हो तो वह वेदान्त है और वही अमूल्य है । वेदान्त चेतनवाद यही हमारे पास कुछ देने जैसी चीज है । भारत के पास यह ऐसी चीज है जो सबको शान्ति दे सकती है । डिसआर्मामेन्ट वगैरह की मिटिंग करने से शान्ति नहीं आयगी । शान्ति तो अन्दर से आती है । आजकल पोलिटिसियन्स शान्ति की बातें करते रहते हैं । लेकिन वह कैसे आयेगी ? वह तो वेदान्त से आयेगी । आपके पास तो

ठगाई है। ठगाई से कभी शान्ति आ सकती है क्या? हिंदुस्तान के पास एक महामंत्र है और वह मन्त्र है अन्तर से शान्ति प्राप्त करने का। यह शान्ति होगी तो बाद में शस्त्र कल होने से भी कोई हर्ज नहीं। यह अन्दर की शान्ति है जो हम सबको दे सकते हैं।

हिन्दुस्तान में देवेन्द्रनाथ, रविन्द्रनाथ, विवेकानन्द, महात्मा गांधी, विनोबाजी जैसे महान व्यक्ति हुए हैं तो हिन्दुस्तान का जो विशेष कार्य है वह होकर ही रहेगा। और तभी हमको कृतकृत्यता का अनुभव आयगा। अब प्रार्थना करके हम समाप्त करेंगे।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात्॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

★



चित्र के मध्य पूज्य श्री शिवाजी भावे हैं और उनके साथ उन पंडितों का चित्र है जिन्होंने यज्ञ में भाग लिया था।
(१. पूज्य श्री मद्रासी वावा, २. श्री श्रीनन्दन झा, ज्योतिषाचार्य, ३. श्री लक्ष्मण उपाध्याय, एम० ए०, ४. श्री भृगुवर झा, एम० ए०, ५. श्री रेवती रमण [illegible]ा, ६. श्री बटेश झा, ७. श्री दिनेश झा।)

अध्याय १६, १७, १८

गीता सर्वोदय यज्ञ के अवसर पर महर्षि शिवाजी भावे द्वारा दिया गया प्रवचन—दिनांक २५-३-६३—स्थान दरभगा।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यांतं न विदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः॥

भगवान् की कृपा--१६, १७ अध्याय

भगवत्गीताशास्त्र १५ अध्याय में समाप्त हुआ। लेकिन भगवान् की कृपा अबतक समाप्त नहीं हुई और भगवान् ने करुणा की दृष्टि से षोडश और सप्तदश अध्याय कहा। और अष्टादश अध्याय में उपसंहार किया। भगवान् यह कृपा नहीं होतो तो सबके लिए गीताशास्त्र कठिन जाता। क्योंकि ब्रह्मविद्या प्राप्त करना यह कोई सामान्य बात नहीं। कर्मयोग में निष्कामता लाना यह भी कठिन है। ध्यानयोग भी सुलभ नहीं। भक्तिमार्ग को लोग सुलभ कहते हैं, सुलभ कहा जाता है लेकिन वह भी सुलभ नहीं। ज्ञानमार्ग तो पृथक्करण और विवेक से प्राप्त होता है। और कठिन है ही। यह सब साधन अर्जुन के लिए भगवान् ने खोल दिये। सामान्य से सामान्य आदमी के लिए पन्द्रहवें अध्याय तक भगवान् ने जो कहा—वह ग्रहण करना कठिन होता है। तो क्या किया जाय?

दैवी आसुरी संपत्ति

भगवान् ने १६ वाँ अध्याय सब के लिए खोल रखा है। डरने की कोई बात नहीं ·सब के लिए एक सामान्य रास्ता भगवान ने खोल दिया है। वह रास्ता है मानवता का, मानवता का विकास होता है तो दैवी सम्पत्ति दिखाई देती है और पशुता का विकास होता है तो आसुरी संपत्ति समाज में दिखाई देती है। यह दैवासुर-संपदविभागयोग में मानवता की बात भगवान् ने कही है। मानवता सब के लिए सुलभ है। ब्रह्मविद्या सुलभ नहीं, ज्ञान-मार्ग, ध्यान-मार्ग, भक्तिमार्ग, कर्मयोग सब कठिन है, लेकिन मानव के लिए मानवता कठिन नहीं। यह सर्वसुलभ है। भगवान् का नाम लेने की इसमें बात भी नहीं। मानवता के गुण बढ़ाना है तो भगवान का नाम न लेते हुए भी भगवान् को प्राप्त कर सकते हैं।

दैवी संपत्ति का अग्रिम गुण अभय : शुकाचार्य, दयानंद, विवेकानन्द

मानवता के गुण देख लीजिये। पहला गुण हैं अभय। अभय से ही भगवान ने दैवी सम्पत्ति के गुण कहना प्रारम्भ किया।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्व लोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

तो ये दवी सम्पत्ति के गुण हैं। और मानवता प्राप्त करने पर इन गुणों को प्राप्ति होती है। पहला गुण अभय ही है। यह तो जनक महाराज का मिथिला प्रदेश है। मिथिला प्रदेश में जनक महाराजा हो गये और उनकी संस्कृति की छाया अभी भी स्पष्ट रूप में है ही। जनक को जब ज्ञान प्राप्त हुआ तब कहा गया 'अभयं वै जनकः प्राप्तोसि' अभय यह दैवी सम्पत्ति में पहला गुण है। पशु में भय रहता है और मानव में अभय रहना चाहिये। 'अभयं वै जनकः प्राप्तोसि' ऐसा जनक के लिये कहा गया।

व्यासदेव ने शुकाचार्य को ज्ञान के लिये जनक के पास भेजा। व्यास खुद ज्ञानी थे ही। शुकाचार्य भी जन्म से हो ज्ञानी थे लेकिन गुरु के बिना ज्ञान पूर्ण नहीं होता। इस दृष्टि से शुकाचार्य को जनक महाराज के पास भेजे गये। शुकाचार्य तो जंगल में रहनेवाले थे। उन्होंने शहर कभी देखा नहीं था। जनक राजा की मिथिला नगरी में वो गये तो आश्चर्य से सब देखते रहे। आखिर वे महल में पहुँचे। जाकर जनक महाराज को साष्टांग नमस्कार किया। शुकाचार्य तो छोटे थे। जनक राजा ने उनको पूछा 'तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? 'शुकाचार्य ने कहा—"मैं व्यासपुत्र हूँ और आपके चरण में ज्ञान प्राप्ति की दृष्टि से आया हूँ।" जनक महाराज ने कहा—"आप आये हैं ठीक है, बहुत अच्छो बात है? आपने रास्ते में क्या-क्या देखा?" शुकाचार्य ने जो वर्णन किया वह विस्मयजनक दृश्य का वर्णन था। हम देखते हैं—तो मिट्टी के रास्ते रहते हैं। ज्यादा पक्का किया

तो डामर का रास्ता रहता है। लेकिन शुकाचार्य ने कहा—"हमने जो रास्ते देखे वे सब शक्कर के थे। रास्ते पर जो दुकानें थीं वे भी शक्कर की थीं। दुकान में जो माल था वह भी शक्कर का था। सब कुछ शक्कर की ही मिठाई थी। आश्चर्य की बात तो यह है कि दुकान में बेचनेवाले थे वे भी शक्कर के पुतले थे। और जो खरीदनेवाले ग्राहक थे वे भी शक्कर के पुतले थे।" राजा जनक ने पूछा—'और यहाँ आकर क्या देखा?" शुकाचार्य ने जवाब दिया "जो राजमहल है वह भी शक्कर का है औ राजमहल की सीढ़ियाँ हैं वह भी शक्कर की हैं।" जनक महाराज ने पूछा, "अब क्या देख रहे हो?" शुकाचार्य ने कहा—"आप भी शक्कर के ही पुतले हैं और हम भी शक्कर के ही पुतले हैं। शक्कर के पुतले एक दूसरे से बातें कर रहे हैं।" जनक महाराज यह कहानी सुनकर संतुष्ट हुए और उन्होंने कहा—"मैं तुम को क्या ज्ञान दूं? तुम तो स्वयंसिद्ध ज्ञानी हो।" जनक महाराज ने शुकाचार्य को अपने यहाँ थोड़े समय रहने के लिए कहा। आप दूर से आये हैं थक गये होंगे। यहीं ही भोजन कीजिये—वगैरह जनक महाराज ने कहा। शुकाचार्य तो जगल में रहनेवाले थे। फलमूल खाकर जीनेवाले थे। यहाँ उनको अच्छी-अच्छी मिठाई बनाकर दी गई। पास में ही जनक राजा ने उनको बिठाया और कहा—'आप थक कर आये होंगे, अच्छी तरह से भोजन कीजिये।" मिठाइयाँ वगैरह परोसी गई थी और पास में बिठाकर जनक महाराज उनको देते रहते थे। खूबी यह थी कि शुकाचार्य के सिर पर छोटी सी दोरी से बांध कर

एक बड़ा पत्थर रखा गया था। शुकाचार्य की नजर वहाँ नहीं थी, लेकिन जनक महाराज ने भोजन करते समय ऊपर देखा। यह देखकर शुकाचार्य ने भी ऊपर देखा। ऊपर देखते हैं तो क्या देखते हैं ? उनके सिरपर बड़ा पत्थर बांधकर रखा गया है। अभी टूटे ऐसी कमजोर दोरी है। शुकाचार्य ने तो कुछ भी कहा नहीं और अच्छी तरह से भोजन करते रहे। फिर से ऊपर देखा भी नहीं। यदि किसी दूसरे को विठाया होता तो वह सोचता रहता कि यह पत्थर सिरपर पड़े तो भोजन भी क्या काम का ? शुकाचार्य शांति से भोजन करते रहे। जनक महाराजा भी कहते रहे "आप स्वस्थता से भोजन करिये। जल्दी मत करिये।" शुकाचार्य ने एक ही बार उस पत्थर की ओर देखा था। बाद में उस ओर देखा नहीं। जितनी देरी जनक कर रहे थे, उतनी देरी उन्होंने भी होने दी।" "हमारा पेट भर गया अब खा नहीं सकते" वगैरह कुछ भी उन्होंने कहा नहीं। संतोष से खाना या उतना खाते रहे। मन में जरा भी डर नहीं था। अभयं वै जनक प्राप्तोसि—यह जनक का लक्षण शुकाचार्य में है—ऐसा जनक महाराज ने देखा।

मानवता का अभय यह पहला गुण है। अभय यह मानवता की पहली निशानी है। किसी को हमारा भय न हो और हमको किसी का भय न हो यह बहुत बड़ी मानवता की निशानी है। यहाँ तो तंत्र का प्रचार है। तंत्र प्रचार में एक वामाचार पंथ रहता है। वह पंथ ऐसा मानता है कि जो सबसे बड़े विद्वान हो, सबसे श्रेष्ठ

हो उसका बली दिया जाय। वे लोग नरबलि देते हैं। दयानन्द सरस्वती बहुत बड़े विद्वान् थे। एकबार वामाचार पंथवालों ने उनको पकड़ लिये और देवी के पास ले गये। कापालिक और वामाचार लोग उनको काटेंगे—ऐसा समय देखा तो दयानन्द सरस्वती ने उनके हाथ में से तलवार ले ली और कहा—"देखो मेरा बलि देने के लिए तैयार हो, देवी सामने है और मैं तुम सबका बलि दे दूंगा।" सब वामाचारी भाग गये और दयानन्द सरस्वती छूट गये। किसी भी परिस्थिति में डरना नहीं यह मानवता का पहला गुण है। विवेकानन्द का भी ऐसा ही प्रसंग है। अहमदावाद में वामाचार लोगों ने उनको पकड़ा और एक कोठरी में बन्द किया। विवेकानन्द सोचने लगे—अब छूटना कैसे? आखिर उन्होंने बलि चढ़ानेवाले लोगों को कहा—आपलोग मेरा बलि चढ़ानेवाले हैं यह तो ठीक है, लेकिन मेरी आखिरी इच्छा तो पूरी करेंगे न? उन लोगों ने कहा—"क्यों नहीं करेंगे"। विवेकानन्द ने कहा—"मैं कुछ घड़े भरकर अनाज ब्राह्मणों को दान देना चाहता हूँ।" वामाचार लोगों ने तो घड़े ला दिये। विवेकानन्द ने अन्दर अनाज भरा और बंगाली भाषा में एक घड़े पर लिखा मैं ऐसे-ऐसे यहाँ पकड़ा गया हूँ। मेरा छुटकारा करिये। अहमदाबाद में एक बंगाली कुटुंब रहता था। उनको यह घड़ा पहुँचाने के लिए कहा। अहमदाबाद के वामाचार लोग बंगाली भाषा जानते नहीं थे। उन्होंने सोचा यह कोई मत्र-तंत्र लिखा होगा। आखिर वह बंगाली आदमी पुलिस लेकर आया। विवेकानन्द छूट गये और वामाचार लोग वहाँ से

भाग गये। क्योंकि गुप्तरूप से वामाचार चल रहा था। दूसरे को हमारा डर नहीं और हमको दूसरे का डर नहीं यह मानवता की निशानी है।

परस्पर भय पशुता

पशु को हमेशा एक दूसरे का डर रहता है। एक कहानी है—बच्चों की ही कहानी है। एकबार सिंह ने जंगल के सब पशुओं को अपने पास बुलाये और पूछा—क्यों सब खैरियत है न? किसी को कुछ डर तो नहीं न? चूहे ने कहा—"मुझे बिल्ली का डर है" बिल्ली ने कहा—"मुझे कुत्ते का डर है" कुत्ते ने कहा—"मुझे भेड़िये का डर है" भेड़िया ने कहा—"मुझे बाघ का डर है।" और बाघ ने कहा—"मुझे आपका का डर है।" आखिर लोमड़ी सिंह को पूछा—"आपको तो किसी का डर नहीं न?" सिंह ने कहा—"मुझे तुम सबका डर है। तुम सब लोग मिलकर मुझे खतम कर डालोगे और यह राज ले लोंगे—"ऐसा मुझे डर है।" पशु में डर रहता ही है। पशुता यह डर की परंपरा है। मानव समाज में डर नहीं रहना चाहिये—यह महत्व की बात है। हम सहकार से रहें—यह मानवता की संस्कृति का विकास करने की निशानी है।

अभय द्विविध

गीताशास्त्र का वर्णन गीताध्यान में भवद्वेषिणी ऐसा किया गया है। हम उसको भवद्वेषिणी भी कह सकते हैं। हम सबको अभयदान

मिलना चाहिये। कोई किसी से डरे नहीं। हमारा किसी को डर नहीं, हम किसी से डरें नहीं। इससे उलटा आसुरी संपत्ति जब समाज में बढ़ती है तो लोग एक दूसरे से डरते हैं। आसुरी संपत्ति में डर क्यों होना चाहिये? क्योंकि उसमें मालकियत की बात रहती है। सब चाहते हैं कि यह मेरे हाथ में रहे, वह मेरे हाथ में रहे।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी॥

मैंने इतने शत्रु को मारा और कल दूसरे शत्रु को मारूँगा। मैंने इतना धन प्राप्त किया और कल दूसरा धन प्राप्त करूँगा। इस तरह की आकांक्षा आसुरी सम्पत्ति में रहती है।

दैवासुर संपद् : कहानी

एक कहानी याद आ रही है—एक नगर में एक सरदार रहता था। उसको कुछ भी काम नहीं था। खाना पीना और सोना यही उसका काम था। धन प्राप्ति का साधन तो उसके पास था ही। पैसे हैं तो और भी पैसे आते रहते हैं। धन धन को बढ़ाता है। धन जैसे बढ़ता गया वैसे उसका पेट भी बढ़ता गया। आजकल कलकत्ता के बड़े-बड़े सेठ के पेट भी बड़े रहते हैं। बम्बई के और कलकत्ता के सेठ मिलते हैं तो आजकल शेकहैन्ड करने की प्रथा है। वे दोनों

सेठ हाथ मिलाने के लिए जाते हैं लेकिन बीच में पेट के कारण उनका हाथ मिलता नहीं। वैसे सरदार का भी पेट बढ़ता था। उसको खुराक पचता नहीं था और इसके कारण बुद्धि एवं आरोग्य बिगड़ता था। उसको असंतोष रहता था और बैठे-बैठे नौकरों पर क्रोध किया करता था। उसके सामने एक झोपड़ी थी। उस झोपड़ी में एक गरीब-बेचारा आदमी रहता था। झोपड़ी भी घास-फूस की थी। वह आदमी वहाँ रहकर धंधा करता था। टोकरी बनाने का उसका धंधा था। उसमें से जो कुछ मिलता था वह अपना चरितार्थ चलाता था। टोकरी बनाना, गाना गाना और आनंद में रहना यह उसका कार्यक्रम था। रात को वह अच्छी तरह से बड़े मजे से सोता था। लेकिन इस सरदार को रात को नींद ही नहीं आती थी। शेक्सपीयर ने कहा है। 'अनइजी लाइज दी हैड दट वेर्स दि क्राउन'। जिसके पास धन रहता है वह बेचैन रहता है। उसको नींद नहीं आती। जब कि वह गरीब बेचारा आनन्द से सोता था। यह देखकर उस सरदार को इस गरीब का मत्सर हुआ। वह सोचने लगा—मैं तो बड़ा सुखी हूँ, लेकिन मुझे संतोष नहीं। वह दरिद्र अपने काम में मग्न रहता है और आनन्द से दिन काटता है। मैं सुखी हूँ, सरदार हूँ, तब भी मुझे संतोष नहीं है। और दरिद्री आत्मसंतोष से रहता है। आसुरी संपत्ति में ऐसा ही मत्सर होता है। सहानुभूति नहीं होती। सरदार ने सोचा यह संतोष के दृश्य का छेदन करना चाहिये। एक दिन उसने अपने नौकरों को कहा कि जब वह गरीब दमी सोया हुआ हो तब उसकी झोंपड़ी को जला दो। नौकरों ने

झोंपड़ी जला दी और वह गरीब बेचारा जैसे-तैसे जान बचाकर भागा। उसको मालूम हुआ कि सरदार ने ही यह सब किया है। वह तो न्यायाधीश के पास गया और कहने लगा—"मुझ गरीब की एक छोटी सी कुटिया थी वह भी जलाई गई। अब क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता।" न्यायाधीश ने पूछा तुमको किसी पर शक आता है क्या ? उस गरीब ने कहा 'एक तो क्या बात सत्य ही है मेरे सामने रहनेवाले सरदारजी ने झोपड़ी जलाई है। हमने तो उसका कुछ भी बिगाड़ा नहीं। हम अपने में आत्म-संतुष्ट रहे। तब भी सरदार ने ऐसा किया। न्यायाधीश ने हुकुम दिया कि सरदार को पकडकर लाया जाय। सरदार को लाया गया। तब न्यायाधीश ने पूछा-'सच बात बताओ तुमने इस प्रामाणिक और आत्म-संतोषी व्यक्ति की झोपड़ी जलायी है न ? सरदार को कबूल करना पड़ा। न्यायाधीश ने उसको कहा—हम तुम को ट्रान्सपोर्टेशन की सजा देते हैं। जिस देश में हम तुमको भेजेंगे वहाँ यह दरिद्री भी जायगा और बीस वर्ष तक तुमको ऐसी सजा भुगतनी है।" इन दोनों को दूसरी जगह भेजे गये जहाँ की भाषा भी ये लोग जानते नहीं थे। वहाँ के लोग एकदम जंगली थे। दोनों को भाषा आती नहीं थी। अब क्या किया जाय ? गरीब ने इशारे से उन आदमियों को पूछा—"हम आपका काम करेंगे। आप हमको खिलायेंगे न ? लोगों ने दोनों को जंगल की लकड़ी काटने का काम दिया। सरदार ने तो कभी काम किया ही नहीं था। वह लकड़ी काट नहीं सका। दरिद्री झट से पेड़ पर चढ़ गया और लकड़ी काटने लगा। लोगों ने सोचा

यह सरदार कुछ काम का नहीं,' और सरदार को रोटी नहीं दी। गरीब को रोटी दी। गरीब को सरदार पर दया आई सोचा अब बीस साल साथ में रहना है ऐसा कैसे चलेगा? ऐसा सोच कर रोटी में से आधा हिस्सा सरदार को दिया और सरदार का पोषण किया। देखने को बात है, सोचने की बात है कि दया गरीबों में ही रहती है। बड़े-बड़े धनवानों में नहीं। उसमें भी अपवाद हो सकता है। धनी को 'इदं अद्य मया लब्ध इमं प्राप्स्ये मनोरथम्'—यही भावना रहती है। दरिद्री सरदार का पालन-पोषण करने लगा। सरदार कुछ काम तो नहीं कर सकते थे, लेकिन खाते थे। इससे इनको बड़ी शरम लगती थी। इसलिये ब्रह्मचर्याश्रम में हमारे यहाँ गरीब को या अमीर को समान शिक्षण दिया जाता है। मजदूरी करना, लकड़ी काटना, रसोई बनाना, गायों को चराना—वगैरह काम धनिक या गरीब, गुरु के घर रह कर समान ही करते हैं। आजकल तो धन के मुताबिक शिक्षण दिया जाता है। समानता नहीं है। इससे हमलोगों में तरह-तरह के दुर्गुण आते हैं। पहली शिक्षा शरीर-परिश्रम की होनी चाहिये। भगवान् सान्दीपनि ऋषि के यहाँ रहते थे और सुदामादेव के साथ काम करते थे। हाँ, तो सरदार की बात चल रही थी। एक दिन उस दरिद्र को कहीं से भी फूल मिल गये। फूल लेकर उसने हार बनाया और वहाँ के लोगों को बतलाया। लोगों को यह देखकर आश्चर्य हुआ और उनलोगों ने अब लकड़ी काटने का काम न देकर हार बनाने का काम उस आदमी को दिया।

सरदार को हार बनाना भी नहीं आता था। धीरे-धीरे वह फूल चूनने का काम करने लगा। दोनों वहाँ रह कर भाषा सिखे। बीस वर्ष के बाद दोनों मित्र बनकर वापस लौटे। तब न्यायाधीश ने कहा तुम्हारी निर्दयता देखो। इस गरीब ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था। अब ऐसा करो—तुम्हारी आधी दौलत इस गरीब को दे दो। गरीब ने कहा—"मुझे दौलत नहीं चाहिये। मैं सरदार जैसा निर्दय बनना नहीं चाहता।" "मुझे तो मेरी झोपड़ी जैसी थी वैसी बनवा दीजिये"। एक मराठी कवि ने कहा है—

"राजास हि महालीं सौख्यें व जीं मिळालीं।
तीं सर्व येथ आलीं या झोपडीत माझ्या॥"

राजा महाराजा को जो सुख मिलते नहीं वे सब मुझे इस मेरी झोपड़ी में मिलते हैं। हम कहते ही हैं—"प्लेन लिविंग एन्ड हाई थिंकिंग।" सादगी से रहना चाहिये। लेकिन उच्च विचार के साथ रहना चाहिये। राजमहल में धन होता है, भोगविलास होते हैं, लेकिन इस भोगविलासों में आत्मसंतोष नहीं मिलता। अपनी संस्कृति झोपड़ी की संस्कृति है। व्यास, वाल्मिकी वगैरह बड़े-बड़े महर्षि झोपडी में ही रहते हैं। तुलसीदास ने रामायण लिखा—वह भी काशी के अस्सी घाट पर बैठकर। यहाँ रिसर्च के बड़े-बड़े मकान हैं। वैसे मकान रामायण और महाभारत लिखनेवाले ऋषि-मुनि के पास नहीं थे। ऐसे बड़े मकानों में बैठकर महाभारत का रिसर्च हो सकता है लेकिन महाभारत नहीं बन सकता है। वहाँ सरकार से ग्रान्ट मिलेगी तब हमारा इतना काम होगा—ऐसी बात नहीं।

ाहला कि मैं यहाँ के रिसर्च इन्स्टीटयुशन को टीका नहीं करता। जो चल रहा है वह बोल रहा हूँ। व्यास वाल्मिकी को ऐसे सरकार से ग्रान्ट लेने की जरूरत नहीं हुई। सोना-चाँदी वगैरह की जरूरत उन्हें नहीं हुई। उनके पास बहुत ही सोना-चाँदी थे। वह कैसे थे "राजास हि महाली सौख्ये न जी मिलाली। ती सर्व येथ आली या झोपडींत माझ्या॥" राजमहल के भोगविलास के सब साधन मेरी इस झोपड़ी में आये हैं—"हिच्या फटीमधूनि सूर्य-प्रकाश येतो सोने भरूनि देतो हया झोपड़ींत माझ्या"—जब सूर्य उदय होता है तब मेरी झोपड़ो में सोना ही सोना आता है। उसके लिये कुछ मूल्य देने की जरूरत नहीं। आजकल सोना ज्यादा रखते हैं तो पकड़े जाते हैं। वैसे हमारे यहाँ नहीं। "हिच्या फटीम-धूनि चंद्रप्रकाश येतो चान्दी भरूनि देतो हया झोपड़ींत माझ्या"—जब चंद्रोदय होता है तब मेरी झोपड़ी में चाँदी ही चाँदी रजत प्रकाश छा जाता है। उसके लिये मुझे सुनार के पास जाने की जरूरत नहीं। और मेरी झोपड़ी में क्या क्या है ? हीरे-मोती भी हैं। यहाँ किसी भी बात की कमी नहीं। कृत्रिम हीरे-मोती की कमी हो सकती हैं। लेकिन सच्चे हीरे-मोती की नहीं। "दव बिंदूनीं नहाते ही झोपड़ी प्रभाती। मोती श्रबूनि येंती हया झोप-ड़ींत माझ्या।" रात की ओस गिरती है और सुबह में वह पिघल करके धीरे-धीरे मोतीरूप में मेरी झोपड़ी में आती है।

"हिच्या फटीमधूनि चद्रप्रकाश येतो, चान्दी भरूनि देतो हया झोपड़ींत माझ्या। दव बिंदूनीं नहाते ही झोपड़ी प्रभाती, मोती

अबूनि येती ह्या झोपड़ींत माझ्या। हमारी इस झोपड़ी में सारे देश का संदेश भर जाता है। "संदेश बांधवांचा घेड़नी येई वारा, आणी सुगंध सारा ह्या झोपड़ींत माझ्या॥ इस झोपड़ी में टेलिफोन नहीं है। टेलिफोन को हमारी भाषा में लम्बकर्ण माने लम्बा कान कहा जाता है। यह लम्बकर्ण भो हमारी झोपड़ी में नहीं है तो संदेशा कहाँ से आता है। अव्यक्त संदेशा खुली हवा से आता रहता है।

"संदेश बांधवांचा घेउनी येई बारा, आणी सुगंध सारा ह्या झोपड़ींत माझ्या॥ इस झोंपड़ी में बांधवों के अव्यक्त संदेश पवन लाता रहता है 'प्लेन लिविंग ऐन्ड हाई थिंकिंग।" यह जीवन ही श्रेष्ठ जोवन है। टोकरीवाला भो ऐसे ही जीता था। कबीर की भी यही हालत थी। वे गाते हैं—झीनी-झीनी-झीनी-झीनी बीनी चदरिया, बिनी चदरिया, बिनी चदरिया, झीनी-झीनी-झीनी-झीनी बिनी चदरिया। आजकल तो मिल में कपड़ा बुना जाता है, लेकिन इस कबीर की चादर की कीमत उस मिल के कपड़े से कई गुनी अधिक हैं। मिल में वह साधुता सरलता नहीं जो कबीर में हैं—"झीनी-झीनी-झीनी-झीनी बिनी चदरिया, बिनी चदरिया, बिनी चदरिया—झीनी-झीनी-झीनी-झीनी बिनी चदरिया॥" कबीर साहब कहते हैं—मेरी चदरिया बन रही है। उनका जीवन सादा जीवन है। दैवी सम्पत्ति का जीवन है।

आसुरी सम्पत्ति स्वरूप : काम, क्रोध, लोभ

भारत की संस्कृति मानवता का विकास करना चाहती है। ज्ञान न हो, ध्यान न हो, भक्तिमार्ग न हो तब भी हम आगे बढ़

सकते हैं ऐसा विश्वास इस दैवासुरसंपद्विभाग में भगवान दे रहे हैं। आसुरी संपत्ति में तो अधम गति ही है।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि। मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्। इस तरह उत्तरोत्तर अधम गति ही इसमें बताई है। थोड़े में आसुरी सम्पत्ति का वर्णन भगवान् ने ऐसा किया है। आगे भगवान् कहते हैं-"कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।" काम, क्रोध और लोभ आसुरी संपत्ति के प्रमुख गुण है। अतः उनको छोड़ा जाय और सादा परस्पर सहकारमय जीवन जीया जाय। तो मानवता का विकाश होगा और दैवी संपत्ति पनपेगी। भगवत् कृपा से यह सुलभता का मार्ग हमको मिला।

शास्त्र

आखिर भगवान् कहते हैं—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्। जो शास्त्र विधि को छोड़कर अपनी इच्छा के मुताबिक वर्तता है उसकी कोई भी गति नहीं ऐसा भगवान् ने बताया।

यहाँ भगवान् ने शास्त्र शब्द का प्रयोग किया है। शास्त्र माने संयम का शास्त्र, मानवता का शास्त्र। भक्तियोग की बड़ी-बड़ी बातें यहाँ नहीं।

वृक्षच्छेद पदप्राप्ति जीवतत्व विचारणा। सर्वत्र भगद्व्याप्ति पुरुषोत्तम भावना। पन्द्रहवें अध्याय का निचोड़ इस तरह एक कारिका में विनोबाजी ने बताया है। यहाँ शास्त्र का अर्थ—

हमारे यहाँ जो शास्त्र का अर्थ लिया जाता है—वह नहीं है। यहाँ दैवासुरसंपदविभागयोग के आखिर में 'जो शास्त्र शब्द आया है—"यः शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्। यह शास्त्र शब्द सीधा सादा शब्द है। जो मानवता के मुताविक नहीं रहता वह शास्त्र विधि छोड़ देता है। यहाँ शास्त्र माने मानवता का शास्त्र।

दैनिक कार्यक्रम यज्ञ

अर्जुन को शंका आई—भगवान ने यह सब कहा—यह तो ठीक है लेकिन मानवता के विकास के लिए जोवनक्रम क्या होना चाहिये। मानवता का विकास कैसे किया जाय ? अर्जुन को जीवन के कार्यक्रम के बारे में शंका आई। हमको दो तरह का जीवन का कार्यक्रम चाहिये। एक तो समूचे जीवन का और दूसरा दैनिक कार्यक्रम। समूचे जीवन का कार्यक्रम तो भगवान् ने सोलहवें अध्याय में कहा। अब दैनिक कार्यक्रम के बारे में अर्जुन पूछता है—

ये शास्त्र विधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्वित :। तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्वमाहो रजस्तमः। जो शास्त्रविधि को छोड़कर यज्ञ-याग करते हैं उनकी कौनसी गति होती है—ऐसा अर्जुन पूछ रहा है। आज हमने सुबह में यहाँ यज्ञ देखा। वेद मंत्र चल रहा था। हमको बहुत अच्छा लगा। उसमें भी एक बुद्धि है। बुद्ध ने यज्ञ-याग का निषेध किया था। यज्ञ-याग छोड़ा था। लेकिन इस यज्ञ में तो पशु-हिंसा नहीं है। जो आहुति देते हैं वह बर्बाद हो रही है—ऐसा कहा जा सकता

है। लेकिन यह तो त्याग का दृश्य है। हम अनाज खाते हैं, घी खाते हैं, वही हमारी जीवन-शक्ति है तो प्रतीक के तौर पर हम त्याग का चिह्न रखते हैं। इससे घी अनाज जाता है लेकिन प्रेरणा मिलती है। अग्नेय स्वाहा, अग्नये इदं न मम'-ऐसा कहकर जीवन शक्ति अर्पण करते हैं। मतलब यह कि यह देह भी एक दिन अग्नि में जाने वाला है। इसकी याद दिलानेवाली चीज का त्याग करते हैं। त्याग का यह दृश्य है। इसी दृष्टि से मंदिर में छप्पन्न भोग लगाते हैं। यह तो ज्यादा हो गया। छोड़ दीजिये यह बात, लेकिन यज्ञ का दृश्य जो हमने देखा वह सुन्दर था। बड़े-बड़े विद्वान् लोग वेदमंत्र बोल रहे थे। ऐसा दृश्य बार-बार देखने को मिलता नहीं। यह गीता यज्ञ चल रहा है, तो ठीक है।

श्रद्धा-प्रार्थना

यजन्ते श्रद्धयान्विता :—इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् तीन प्रकार की श्रद्धा बताते हैं—सत्व, रज और तम। श्रद्धा माने प्रार्थना। आदमी सुबह उठता है तो उठकर प्रार्थना करता है, करनी चाहिये। शाम सवेरे चिड़ियाँ मिलकर चूँ चूँ करती हैं। सुबह में उठकर चिड़ियाँ चूँ-चूँ करती हैं। यह क्यों करती हैं? वे भी भगवान् का ही नाम लेती होगी। सुबह उठकर बोलने के कई स्तोत्र हैं शंकराचार्य के स्तोत्र हैं, तुलसीदासजी का तो है ही :

"जागिये रघुनाथ कुंवर पंछी बन बोले, जागिये रघुनाथ कुंवर,
चद्रकिरण शीतल भयी चकहि पिय मिलन गयी,

त्रिविध मंद चलत पवन पल्लव द्रुम डोले……जागिये……
उषसि मागध मंग गायनैः, झटिति जाग्रहि-जाग्रहि-जाग्रहि ।
आर्य कृपार्द्र कटाक्षविलोचनैः, जगदिदं जगदंब सुखी कुरू ॥

तरह-तरह से प्रातस्मरणीय स्तोत्र बोले जाते हैं। यह सुनकर अच्छा लगता है। पहले तो ब्राह्ममुहुर्त में उठना चाहिये। उठकर सात्विकता से प्रार्थना करनी चाहिये।

यज्ञ :-दान : तप : समर्पण

समूचे दिन का कार्यक्रम सत्रहवें अध्याय में भगवान् ने बताया है। सुबह की प्रार्थना हो गई। उसके बाद यज्ञ-दान-तप आते हैं। यज्ञ माने अग्नि में होम हवन करना यह नहीं। यह तो पूजा का एक भाग है। राष्ट्र की कमी को पूरा करना इसको यज्ञ कहते हैं। विनोबाजी कहते हो हैं और शंकराचार्यजी ने कहा ही है कि "दानं संविभाग:" सृष्टि में विषमता रहती है। कोई छोटा तो कोई वड़ा, कोई बलवान, तो कोई निर्बल, कोई उदार तो कोई कंजूस—ऐसी विषमता को दूर करना यह दान से होता है। दान यह रोज का कार्यक्रम है। दान जब से बन्द हुआ तब से समाज का कार्य आगे नहीं चलता। और तप माने क्या? तपस्या करनी है तो वह समाज के लिए। वैज्ञानिक तपस्या करते हैं और बड़ी-बड़ी खोज करके समाज को फायदा देते हैं। पंचाग्नि साधन को तप कहते हैं। उपनिषद में इसको अलिंग तप कहा है। भारत में समाज को फायदा हो इस दृष्टि से जादा संशोधन नहीं किया जाता। यूरोप में इस तरह का काम, इस तरह का तप ज्यादा होता है। भारत

में तप की जरूरत है। प्रार्थना हो गयी। यज्ञ-दान-तप हो गये तो बाद में शाम के समय में—ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधं स्मृत: ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥ ॐ तत्सत कह करके पूरा दैनिक कार्य-क्रम भगवान को अर्पण करना चाहिये।

त्याग

सोलहवें अध्याय में मानवता की प्राप्ति हुई। बाद में सत्रहवें अध्याय में यज्ञ-दान-तप समर्पण वगैरह की बातें हुई।

अब अठारह अध्याय में अर्जुन—संन्यासस्य महाबाहो तत्त्व-मिच्छामि वेदितुम्। त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन॥ यह महत्व का प्रश्न पूछता है। अर्जुन का यह आखिरी प्रश्न है। संन्यास और त्याग का भेद वह जानना चाहता है। किन चीजों को त्याग करना चाहिये इसका भी विवेक आदमी को आना चाहिये। एक आदमी था वह गंगा-स्नान करने के लिए गया। बाद में कहने लगा गंगा-स्नान करके मैंने बहुत सी वस्तुओं का त्याग किया है। किसी ने पूछा—तुम ने किन-किन वस्तुओं का त्याग किया? तो वह कहने लगा—मैंने सत्य-वचन का त्याग किया, प्रेम का त्याग किया। त्याग किस चीज का इसका विवेक भी आदमी को करना चाहिये। इसलिये संतों ने गाया है। नाम जपन क्यों छोड़ दिया। क्रोध न छोड़ा झूठ न छोड़ा, सत्य वचन क्यों छोड़ दिया—नाम जपन क्यों छोड़ दिया? सत्य वचन क्यों छोड़ा। यह कोई छोड़ने की चीज है? धर्म कौनसा और अधर्म कौनसा इसका भी विवेक होना चाहिये।

चातुर्वर्ण्य

अठारहवें अध्याय में चातुर्वर्ण का धर्म भगवान् ने अच्छी तरह से बताया है—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥
कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥

इस तरह चार वर्ण भगवान् ने कहे हैं। लेकिन इसके बारे में हमारे यहाँ काफी गलतफहमी हुई है। ब्राह्मण के लिए कोई खास कर्म कहा नहीं। ब्राह्मण के गुण बताये हैं। यह तो गुण-कर्म विभागशः विभाग किये गये हैं। शम दम इत्यादि के साथ रहना यह ब्राह्मण की विशेषता है। ब्राह्मण कर्म पर नहीं होना वह गुण पर होता है। इसका मतलब यह नहीं कि ब्राह्मण को कर्म नहीं करना चाहिये। इसका मतलब इतना ही कि ब्राह्मण में तो ये गुण चाहिये ही। शूद्र और वैश्य का विभाग भगवान् ने कर्म पर किया। कृषि-वाणिज्य माने—अभी जो कारखाने चलते हैं वे भी उसमें शामिल हैं-यह सब कर्म वैश्य का है। इसका मतलब यह नहीं कि वैश्यों में शांति, तेज वगैरह गुण नहीं चाहिये। विशेषता भगवान् ने जो बात बताई इन बातों को होनी चाहिये—शूद्र के लिए भी वैसा हो।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥

शौर्य यह क्षत्रिय का गुण है। आग लगी है तो क्षत्रिय बैठा नहीं रहेगा। चाहे वह जन्म से—वर्ण से क्षत्रिय न भी हो। लेकिन स्वभाव से होगा तो वह आगे दौड़ेगा और आग बुझायेगा।

त्यागरत्न की कहानी

तो वर्ण धर्म का त्याग नहीं करना चाहिये। आश्रम धर्म भी अपने स्थान पर रहेगा। लेकिन आखिर में सब कुछ छोड़ना पड़ता है। इस देह को भी छोड़ना पड़ता है। उसके साथ सब कुछ छोड़ना तो है ही। तो भगवान् कहते हैं—इन सबको छोड़कर एक तत्व को पकड़ो।—

'सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

'त्यज धर्मं अधर्मं च उभे सत्यानृते त्यज" सब छोड़ो तो स्वीकार किसका करना? स्वीकार भगवान का करना और वही टिकने वाला है। इस तरह अठारहवें अध्याय का मर्म—'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' यही है। किसी को शंका आती है कि सर्वधर्म छोड़ना है तब तो हम शैतान ही बन गये। तब भगवान् प्राप्ति होगी कि शैतान प्राप्ति होगी? यह तो बड़ी कठिन परिस्थिति है। यह भी छोड़ो और वह भी छोड़ो तो दोनों के बीच में हम रहेंगे और कुछ मिलेगा नहीं। लेकिन यह शंका व्यर्थ है।

इसके लिए ठीक कहानी याद आती है। एक गांव के पास एक साधु रहता था। लोग उस साधु के पास जाया करते थे। उसके पास भजन करते थे और सब आनंद में निमग्न रहते थे। व्यवहार में तो कर्म करना पड़ता है और कर्म से बंधन होता है इसलिये आदमी को आनन्द मिलता नहीं। उस गांव में एक दरिद्र आदमी रहता था। वह भी उस साधु के पास जाया करता था लेकिन उसको समाधान नहीं था। "भूखे भजन न होई गोपाला" एक दिन समाधान के लिये वह अकेला गया और साधु महाराज को कहने लगा 'साधु महाराज आपका उपदेश बहुत ही सुन्दर है, लेकिन उससे हमारा पेट भरता नहीं। इसलिये हमको कुछ इलाज बतलाइये। जिससे कि हमारा पेट भरे। "साधु महाराज ने कहा तुम सब कुछ छोड़कर जंगल में जाओ।" इस दारिद्र को आश्चर्य हुआ कि पेट भरने के लिए लोक बड़े-बड़े शहर में जाते हैं, नौकरी के लिए अर्जियाँ करते हैं। कई लोगों को खुश करने का प्रयत्न करते हैं तब तनखाह पाते हैं। यह साधु तो अव्यवहारिक लगता है। लेकिन मन में सोचा साधु ने कहा है तो जंगल में जायेंगे। वहाँ खाना नहीं मिला तो शहर में ही। शहर में जाकर अर्जियाँ करेंगे, बड़े लोगों की सिफारिश से पेट भरेंगे। साधू का मान कर वह आदमी जंगल में गया। वहाँ उसने बहुत पेड़ देखे तो अपने साथ कुल्हाड़ी ले गया और लकड़ी काट कर—बेच कर पेट भरने लगा। उसने सोचा हमने साधु को अव्यवहारू माना था। उसकी बात पहले हमको जंची नहीं थी। लेकिन यहाँ पेट तो भरता है। वह साधु

के पास गया और कहने लगा—आपके उपदेश से हमको मेहनत तो करनी पड़ती है लेकिन पेट भरता है। आपकी बहुत कृपा हुई। साधु ने कहा—तुम तो नम्बर एक मूर्ख हो। कुछ भी समझता नहीं। यह भी छोड़ दो और आगे बढ़ो। इस जंगल का त्याग करो। एक-एक करके त्याग करना होता है। त्याग से भगवान मिलेगा यह लोगों के समझ में नहीं आता। लेकिन भगवान कहते हैं—सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" उस आदमी ने जंगल को छोड़ा और आगे गया तो सब जगह चन्दन वृक्ष दिखाई दिये।

शैले शैले न माणिक्यम् मौक्तिक न गजे गजे। साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं वने वने॥ चन्दन सब जगह नहीं मिलता। वह आदमी चन्दन की लकड़ी काट कर बेचने लगा और श्रीमान् हो गया। उस साधु के पास गया और कहने लगा—"आपका उपदेश एकदम ठीक है। हम आगे बढ़े तो हमको चन्दन के पेड़ मिले और हम श्रीमान् हुए।" साधु महाराज ने कहा क्या ठीक है। तुम तो नम्बर एक मूर्ख हो और वह आदमी और आगे बढ़ा तो उसको चांदी वगैरह की खाने मिली। वह तो चाँदी निकाल कर बेचने लगा और अब महाराज के पास आकर कहने लगा—महाराज अब तो मैं मूर्ख नहीं कहा जाऊँगा—ऐसी आशा रखता हूँ। मैं जब जब आता हूँ तब आप मुझे मूर्ख कह कर ही सम्बोधन करते हैं। महाराज ने पूछा अब कैसे मूर्ख नहीं कहा जायेगा ?" उस आदमी ने कहा—"अब तो मैं बहुत ही श्रीमान् हो गया। अब क्या

है ? साधु ने कहा—"तुम बहुत ही मूर्ख हो और भी आगे बढ़ो। वह आदमी और आगे गया तो उसको सोने की खाने मिली। वह सोना बेचकर बहुत ही श्रीमान् हुआ। फिर से साधु के पास आया तो साधु ने कहा—अब मेरे पास बार-बार क्यों आते रहते हो ? आगे बढ़ो यही मेरा मंत्र है। वह आदमी कहने लगा—लेकिन अब आगे बढ़ने की तो कोई भी आवश्यकता नहीं। हमलोग भी ऐसा ही सोचते हैं। स्वराज्य मिल गया तो लोगों ने सोचा अब कुछ मिल गया, अब कुछ करने का बाकी नहीं। साधु ने उस आदमी को कहा—आगे बढ़ते जाओ पीछे छोड़ते जाओ यही मेरा संदेश है। बार-बार मेरे पास क्यों आते हो ?" वह आदमी तब और भी आगे बढ़ा। तो उसको हीरे मिले। हम बड़े पुरुष की हीरक जयंती मनाते हैं। आगाखान की हीरक जयंती मनाई गई तब उसको तुला में प्लेटिनम् रखा गया था।

विनोबाजी को भी तौलने का सोचते थे। लेकिन सोचते थे कि विनोबाजी को किससे तौला जाय ? आखिर लोगों ने सोचा कि विनोबाजी को सूत से तौला जाय। सूत से तुलादान करके विनोबा-जयन्ती मनाई जाय। सूत की गुन्डियाँ तो बहुत सी रहती हैं। आपके मधुवनी में काफी सूत रहता है। विनोबाजी को सूत से तौलाना कोई बड़ी बात नहीं थी। उनका वजन कुछ ज्यादा नहीं। आजकल बड़े लोगों को सोने से तौलने की रीति चल पड़ी है। विनोबा जी कहते हैं कि—हम सोना देते हैं। और अमेरिका से लोहा खरीदते हैं। पारसमणि होता है तो लोहे का सोना करता

है। लेकिन सरकार ऐसा पारसमणि है जो सोने का लोहा कर रही है। हाँ—तो विनोबा जी ने कहा हम कभी भी तुला में नहीं बैठेंगे। तुला में बैठने का लोगों को बड़ा मोह रहता है। भगवान् ने द्वारका बनाई आखिर यादवों ने सोचा कि भगवान की तुला की जाय। किससे तुला की जाय? निश्चित किया कि भगवान् को सुर्वण से तौला जायगा। भगवान् की सुवर्णतुला की जायगी। भगवान् ने कहा ठीक है। हम तैयार हैं। यादव भी तैयार हुए और दूसरे दिन सुबह भगवान् को तुला के एक पल्ले में बिठाये गये और दूसरे पल्ले मे यादवों ने अपने समूचे अलंकार रख दिये। लेकिन तुला वैसी ही रही। भगवान् का पल्ला नीचे ही रहा। यादवों ने सोचा अब क्या किया जाय? सारा सोना डाला तो भी भगवान् नीचे ही रहे। सब यादव सत्यभामा के पास गये। सत्यभामा कृष्ण की पत्नी थी और सत्य से ही चलती थी। यादवों ने सोचा इनके अलंकार में सत्य का गुण आयेगा और भगवान् सत्य से अभिमंत्रित अलंकार से तौले जा सकेंगे। यादव सत्यभामा के पास गये और कहने लगे—माताजी हमको बहुत शर्म आती है हमने भगवान् को सुर्वण से तौलने का प्रस्ताव रखा था। पूरा सोना रख दिया भगवान् तौले नहीं जाते। आपके अलंकार सत्य से अभिमंत्रित हैं। वह मांगने की शर्म तो आती है, लेकिन क्या किया जाय? भगवान् को तौलने के लिए आपके अलंकार मांगने हम आये हैं। सत्यभामा ने कहा आपका काम होता है तो

ठीक ही है"। ऐसा कह कर उसने सत्य से अलंकृत अलंकार निकाल कर दिये। वह अलकार जब सत्यभामा के अंग से निकले तब उसका सत्यत्व चला गया और भगवान् तुले नहीं गये। आखिर सब यादव रुक्मिणी माता के पास गये और कहने लगे हमको कुछ इलाज बताइये। इतना सब सोना तुला में रखा, लेकिन भगवान् तुले नहीं जाते। भगवान् जो सोने का सोना है वह किस सोने से तौला जायेगा ?—

"श्रोत्रस्य श्रोत्रम् मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः। चक्षुणश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवंति॥

जो आँख की आँख है उसको किस आँख से देखा जायगा ?
जो कान का कान हैं उसको किस कान से सुना जायगा ?
जो सोने का सोना है उसको किस सोने से तौला जायेगा ?
केनोपनिषद का यह मंत्र हैं। भगवान कैसे तौले जायेंगे ?

लंदन में जब बापू गये थे तो उनको पूछा गया—व्हाट इज मोर गोल्डेन देन गोल्ड ?" बापूने उत्तर दिया "ट्रूथ इज मोर गोल्डेन देन गोल्ड।" भगवान सोने का सोना है। सब अलंकार एक पल्ले में रख दिये तो भी भगवान तौले नहीं गये। आखिर रुक्मिणी माता जी ने कहा सोने का सोना कभी सोने से तौला जा सकता है क्या ? उन्होंने एक तुलसीदल डाला और भगवान का पलड़ा ऊपर उठा। भगवान तौले गये। यादववासी सब खुश हो गये। भक्ति के बिना भगवान तौले नहीं जाते। हाँ तो उस साधु ने उस आदमी को कहा हीरे की तो क्या कीमत है। हीरे से भी आगे बढ़ते जाओ। वह

आदमी आगे बढ़ा तो उसने तत्व-रत्न देखे ! साधु महाराज को आकर वह कहने लगा—अबतक तो मैं उठा सकता था लेकिन ये तत्व-रत्न, ये त्याग के रत्न मुझसे उठाये नहीं जाते। आइये—हमको मदद करिये।" साधु महाराज ने कहा—अब तुम समझने लगे हो। सोना चाँदी वगैरह जड़ है। वह अपना नहीं हो सकता। त्याग तत्व यह सबसे बड़ा तत्व है।"—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणंव्रज।
अहंत्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

यह सबसे बड़ा उपदेश भगवान ने अर्जुन को दिया।

गीता-तात्पर्य—मोह-निवारण

बाद में भगवान अर्जुन को पूछते हैं—'कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा। कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय॥ हे अर्जुन! तुमने यह सब ध्यान से सुना न? तेरा सम्मोह अज्ञान दूर हुआ कि नहीं? सबधर्म का निचोड़ भगवान ने कह दिया और बाद में भगवान ऐसा प्रश्न पूछते हैं। भगवान को संदेह नहीं है। लेकिन अर्जुन की परीक्षा की दृष्टि से वे पूछ रहे हैं। धर्म-प्रवचन यदि एकाग्रता से नहीं सुनते तो उसका कोई अर्थ नहीं रहता।

अर्जुन ने जवाब दिया—"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत"—हे भगवान मेरा सब मोह नष्ट हो गया। मोह—निवारण यही गीता का तात्पर्य है।

यत्रयोगेश्वरः कृष्णो

लेकिन यह सब सुनकर भी धृतराष्ट्र का मोह नष्ट हुआ नहीं। धृतराष्ट्र का अर्थ ही है कि जिसने दूसरे का राष्ट्र ले लिया है। धृतराष्ट्र "धृत राष्ट्र" था और पांडव 'हृत राष्ट्र' थे। हृत राष्ट्र

माने जिसका राष्ट्र लिया गया है वह । धृतराष्ट्र ने संजय को कहा—'व्यास ने तुमको यह सब कहने के लिए तुमको बिठाया था क्या ? व्यास ने तो कहा था कि युद्ध में क्या होता है यह कहो । तो किसका विजय हुआ—यह तो मुझे कहा नहीं और—ब्रह्मविद्या, भक्तिमार्ग, ये सब क्या लगाया ? तो संजय ने कहा—यह तो साफ ही है—यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः । तत्र श्री विजयो भूतिध्रु'वा नीतिर्मतिर्मम ॥ जहाँ श्रीकृष्ण हैं उनके उपदेश को सुननेवाला अर्जुन हैं, वहाँ श्री कीर्ति जीती रहती ही है ।" भगवान का उपदेश धृतराष्ट्र सुनता नहीं और अर्जुन सुनता है वहां निश्चय ही विजय होगा ।

उपसंहार

सात दिन में गीता का तात्पर्य कह नहीं सकते । लेकिन भगवान की कृपा से हमने थोड़ा बहुत कहने का प्रयत्न किया । अब हमारा मुकाम यहाँ रहेगा नहीं । आप लोगों ने सात दिन में जो कुछ सुना वह हंसक्षीर-न्याय से ग्रहण करिये । जो कहा सबका सब ठीक ही-होगा ऐसी बात नहीं । उसमें जो अच्छी बातें हो वह भगवान कृष्ण को समझिये । और जो त्याज्य बातें हो हमारी समझिये । हमारी बातों को छोड़ दीजिये और भगवान की बातों को ग्रहण करिये । गीता का तात्पर्य यही है ।

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रजः अहंत्वा कर्मपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥" और हम प्रार्थना करते हैं ।

'सर्वे अत्रः सुखिनः शन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात् ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

—००—

श्री उपाध्याय जी के प्रश्न का महर्षि शिवाजी के द्वारा दी गई उत्तर—दिनांक-२५-६-६३ दोपहर के एक बजे-स्थान-दरभंगा अतिथि-निवास :—

प्रश्न—शास्त्रों में कहा है कि निर्गुण का ध्यान करो। यह कैसे की जाय ?

उत्तर—उसमें ऐसा है कि सगुण का जो ध्यान करना है उससे एकदम उलटी बात निर्गुण में है। सगुण ध्यान माने जो कुछ हम देखते हैं वह मन में लाना। उपनिषद भी कहता है कि सूर्य, चन्द्र, आकाश वगैरह से हम बड़े हैं। इसका मतलब क्या ? इसका मतलब यह कि छोटे वर्तन में बड़ी चीज रह नहीं सकती। हम चन्द्र, सूर्य, आकाश वगैरह को देखते हैं। इसका मतलब यह कि हमारा हृदय-आकाश उस आकाश से भी बड़ा है। हम बड़े हैं और सब हम में समा जाते हैं। यह सगुन ध्यान है।

कोई कहता है हमने चतुर्भुज मूर्ति का दर्शन किया। इसका मतलब क्या ? चतुर्भुज मूर्त्ति तो सिनेमा में भी बतलाते हैं। तो आपलोगों ने दर्शन किया उससे क्या ? हम सबसे बड़े हैं और सब हमसे छोटे हैं—जिसको हम देख सकते हैं। निर्गुण-निराकार का ध्यान यह ध्यान नहीं होता। ध्यान तो सगुन का ही होता है। निर्गुण ध्यान से हम सगुण हैं और उस निर्गुण में हम विलीन हो जायँ तब निर्गुन ध्यान होता है।

हम सबको आत्मसात करते हैं यह सगुन ध्यान है और हम खुद निर्गुण में विलीन हो जायँ तो यह निर्गुण विलीनीकरण है। इसको ध्यान नहीं कहा जायगा। यह विलीनीकरण है, निर्गुणोपासना है। सक्कर पानी में मिल जाती है वैसे हम मिल जायँ तो निर्गुणोपासना होती है। लेकिन यह बहुत कठिन बात है। ऐसा हो गया तो कुछ रहा ही नहीं। इसके उदाहरण के तौर पर हम निन्द को ले सकते हैं। निन्द में हम एकदम विलीन हो जाते हैं। लेकिन वह तो तमोगुण है और फिर से जब हम उठते हैं तब हमारे में कोई परिवर्तन नहीं होता। इसलिये निद्रा का दृष्टान्त भी ठीक नहीं। लेकिन सामान्य आदमी को समझाना है तो इसके अलावा और कोई दृष्टान्त भी नहीं। सक्कर पानी में मिलती है तो वह फिर से सक्कर नहीं होती। सांइटिफिक प्रौसेस से करते हैं यह बात अलग है। लेकिन सक्कर पानी से अलग नहीं होती वैसी निर्गुणोपासना है। निन्द में से हम अलग-अलग हो जाते हैं, लेकिन यदि हमारा परिवर्तन एक बार निर्गुण मे हुआ तो बाद में कुछ रहता नहीं।

वह विलीनीकरण आनन्द से होता है। क्लोरेफार्म आदमी को देते हैं, तब आदमी घबराता है। मूर्च्छा में आदमी रहता है तब भी वह घबराता है। क्योंकि उसमें प्रेशर आता है। लेकिन इस विलीनीकरण में ऐसा नहीं। इसमें तो आदमी अपने स्वरूप मे ही विलीन होता है।

—:۞:—

गीता प्रवचन सुननेवाले श्रोताओं में से हेमेश्वर सिंह नामक नवयुवक के प्रश्न और महर्षि शिवाजी भावे के उत्तर—दिनांक–२४-९-६३—स्थान—दरभंगा अतिथि-निवास :—

प्रश्न—गीता के बारे में कई समय से एक प्रश्न मन में रहता है कि इतनी सारी गीता भगवान ने कही लेकिन उससे हुआ क्या ? अन्त में तो अर्जुन ने लड़ाई करना मान्य किया और अठारह अक्षौहिणी सेना लड़ करके नष्ट हुई।

उत्तर—उसमें ऐसा है कि एक तो भगवान को लोग मानते नहीं थे। यादव तो भगवान को मानते ही नहीं थे। कौरव तो उनके विरुद्ध थे और पांडव में भी सिर्फ अर्जुन ही भगवान को मानता था, भीम वगैरह भी उनको मानते नहीं थे। यह जो नतीजा आया वह भगवान के उपदेश के कारण नहीं आया, लेकिन भगवान के तत्त्व को नहीं मानने का यह नतीजा है। भगवान ने ही कहा है—मेरा अपमान जगह-जगह लोग करते हैं। कौरव करते हैं यह तो ठीक है लेकिन यादवों ने भी भगवान का कुछ माना नहीं और अन्त में द्वारका का नाश हुआ।

तो जहाँ भगवत तत्त्व नहीं मानते वहाँ विनाश ही है। आप ही कहते हैं कि अठारह अक्षौहिणी का सैन्य मर गया। यह सब विनाश हुआ लेकिन इस विनाश में से एक अविनाशी तत्त्व गीता मिला।

ऐसा देखा गया है कि जहाँ भोग-वैभव ज्यादा बढ़ते हैं वे किसी का भी मानते नहीं। यह हमारा भी अनुभव है। आजकल फ्रान्स, अमेरिका, रशिया वगैरह देश किसी को मानते हैं क्या ? शान्ति की बातें वे सुनते नहीं। उनको तभी ख्याल आयेगा, जबकि ऐटम बम से विनाश होगा। भगवान का वैसा ही हुआ। किसी ने उनको माना नहीं और अपना विनाश किया।

प्रश्न—लेकिन भगवान बुद्ध ने जैसे करुणा का मार्ग बताया, सबकी बुद्धि बदल दी। वैसे भगवान कृष्ण भी सबकी बुद्धि बदल नहीं सकते थे क्या ? तो इतना विनाश और हिंसा तो नहीं होती।

उत्तर—इसमें ऐसा है कि भगवान के सामने विषय था मोह का। मोह का विनाश करना यही उन्होंने विषय रखा था। भगवान सब की बुद्धि बदल सकते थे, वे तो कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं शक्तिमान हैं। लेकिन भगवान ऐसा करते हैं तो मानवों की बुद्धि विकसित नहीं होती। विनोबा जी ने यह बहुत अच्छी तरह से समझाया है। भगवान शिक्षक है। शिक्षक ही यदि सब प्रोबलेम्स सोल्व कर देते हैं तो विद्यार्थी की बुद्धि कैसे विकसित होगी ? चित्रकार खुद चित्र निकालता रहता है। विद्यार्थियों को कुछ करने देता नहीं तो विद्यार्थी कैसे आगे बढ़ेगा ? भगवान कौरव-पांडव की बुद्धि बदल सकते थे। लेकिन उससे उनका विकास नहीं होता। मां-बाप का भी यही फर्ज है कि वे अपने बच्चे को अपने पैर पर खड़े रह सके वैसे करे, न कि जीवन भर उनका पोषण करते रहे।

भगवान को खुद को समाधान हो यह अभीष्ट नहीं। लेकिन

कौरव-पांडव अनुभव करके कुछ सीखे यही उनको अभिष्ट था। भगवान बुद्ध का उदाहरण एकदम अलग ही है। वे करुणा से प्रेरित थे। उनके मन में करुणा ही करुणा थी। करुणा से किसी का कुछ काम कर देना या करवा देना भगवान कृष्ण का मार्ग नहीं था। उनका रास्ता था प्रेम का और वे सत्य की दृष्टि से आगे बढ़ते थे।

भगवान को दृष्टि से संहार माने क्या? कुछ भी नहीं। उनकी दृष्टि एक भूमिका की थी। यहां हम इस कमरे में बैठे हैं। यहीं हजारों चीटियां, कीड़े और मकोड़े होंगे। उनका नाश होता होगा। लेकिन हमको कुछ लगता है क्या? उससे भी उच्च भूमिका भगवान की है। और वैसा ही उनके खुद के बारे में हुआ युद्ध समाप्त के बाद भगवान जब गांधारी के सामने आये तो गांधारी कहने लगी—तू ही यह सब विनाश का कारण है। मेरे कुल का जैसे विनाश हुआ वैसे तेरे कुल का भी विनाश हो। तब भगवान कहते हैं—देवी तुम ठीक हो कहती है। तथास्तु कहकर भगवान वहां से निकल गये और उनके कुल का भी विनाश हुआ।

लड़ाई सब हुई लेकिन भगवान उसमें पड़ते नहीं। वे अलिप्त हैं। उन्होंने तरकीब ही ऐसा निकाली थी कि व्यवहार में पड़ने का उनको मौका नहीं आया। खराब होगा ऐसा सोचकर भी वे व्यवहार में पड़ने नहीं। इसलिये पहले ही उन्होंने कहा—गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पंडिताः। यह संहार वगैरह का उनपर कुछ भी असर नहीं होता। वैसी बुद्ध की भूमिका नहीं थी। उनकी भूमिका करुणा

की भूमिका थी और एक गुरु की भूमिका थी। कृष्ण की भूमिका ईश्वर की भूमिका थी और वह उच्च भूमिका थी, तटस्थ भूमिका थी। इसलिये भगवान बार-बार अर्जुन को युद्धस्व कहते रहते हैं। यहाँ युद्ध करना या नहीं। करना यह प्रश्न नहीं। अर्जुन ने युद्ध करना ही ठीक माना था। इसलिये भगवान कहते हैं कि तुमने युद्ध को ठीक ही माना है तो अब मोह से मत हटो। यदि कोई चोर होता है और वह भगवान को कहता है कि चोरी मेरा कर्तव्य है। उसके बाद किसी आशक्ति के कारण वह चोरी करने नहीं जाता तो भगवान उसको ऐसा ही कहेंगे कि नहीं अब चोरी करना ही तुम्हारा कर्तव्य है। और अर्जुन को जैसे कहा—'माम् अनुस्मर युद्धय च' कहा – वैसे ही चोर को भगवान कहेंगे माम् अनुस्मर चौर्य कर्मम् कुरु।

मोह निवारण यही गीता का मुख्य विषय है। हिंसा करना यह नहीं, हिंसा श्रेष्ठ कि अहिंसा श्रेष्ठ यह गीता का विषय नहीं है। गीता के आखिर में भी अर्जुन कहता है—नष्टो मोहः और गीता के आरंभ में भी अर्जुन कहता है—धर्म संमूढ़ चेताः। इस तरह मोह निवारण यही गीता का मुख्य विषय है। हिंसा अहिंसा की बातें गीता के सामने नहीं।

प्रश्न—घर में सम्पत्ति के झगड़े होते हैं तो गीता के आदेश के मुताबिक क्या करना चाहिये?

उत्तर—गीता के आदेश के मुताबिक यदि हम मोह से किसी भी काम में पड़ते हैं तो वह छोड़ना चाहिये। वगैर मोह काम कर सकते

हैं तो करना चाहिये। भगवान का खुद का उदाहरण भी है और जनक राजा का उदाहरण कहाँ नहीं ? जनक राजा कहते हैं मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति कश्चन—यह कितना कठोर वाक्य है। जिस राज्य पर राजा जनक राज्य कर रहें हैं वह राज्य जल जाय तब भी उनको कुछ नहीं, यह कितनी कठोरता—इस दृष्टि से सोचना नहीं चाहिये। वे कितने अलिप्त थे ऐसे सोचना चाहिये। वैसे ही भगवान का है। उनको युद्ध में जाना पड़ा इसलिये वे गये। तब भी उन्होंने कहा—मैं शस्त्र धारण नहीं करूंगा, लोगों की सेवा करूंगा और कोई पूछना है तो उपदेश दूंगा। भगवान का खुद का ही उदाहरण है। वे लोगों की सेवा करते रहे, लेकिन स्थितप्रज्ञ भाव से रहे।

गीता का उद्देश्य युद्ध कर्तव्यता नहीं है। न हि अत्रे युद्ध कर्तव्यताम् विधीयते—ऐसा सब टीकाकारों ने कहा है। युद्ध तो प्रासंगिक है। वह गीता का उद्देश्य नहीं हो सकता। गीता मिलटरी का ग्रन्थ थोड़े ही है ?

अहिंसा का सिद्धान्त सर्वमान्य है ही। खुद भगवान ने भी युद्ध में भाग न लेकर यह प्रतिपादित किया।

ऐसा है दुनियाँ तो जड़ है। आजकल के वैज्ञानिक कहते हैं—हम चन्द्र पर जायेंगे, इतनो तरक्की करेंगे, उतने बम बनायेंगे। लेकिन एक भूकम्प हुआ तो यह सब खतम हो जायगा। दुनियाँ आगे बढ़े इसकी हमें कोशिश करनी है, लेकिन वह भी निर्मोहता से।

—:०:—

गीता प्रवचन सुननेवाले में से एक भाई के प्रश्न का महर्षि शिवाजी भावे के द्वारा दिया गया उत्तर दिनांक--२२-९--६३ स्थान---दरभंगा अतिथि-निवास सुबह--१० बजे ।

प्रश्न :—आपने कल कहा था कि आध्यात्म शास्त्र में गुरु के बिना नही चलता, तो गुरु के बिना आत्मज्ञान नहीं हो सकता क्या ?

उत्तर :—गुरु के बिना आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है। गुरु चाहिये ही ऐसी बात नहीं। उसके लिये रामकृष्ण परमहंस ने एक सुन्दर दृष्टान्त दिया है। वैसे उनके भी अनेक गुरु थे। जैसे दत्तात्रय के बहुत से गुरु थे। रामकृष्ण ने दृष्टान्त दिया है कि समुद्र में एक बड़ा जहाज है और उसके—इर्दगिर्द अनेक छोटी-छोटी नावें लगी हुई है। समझ लीजिये वह जहाज नहीं रहा तो वे नावें स्थान पर जायेगी ही नहीं ऐसा नहीं। वह अपनी गति से स्थान पर जरूर पहुँचेगी। लेकिन अगर वे जहाज से जुड़ी हुई जाती है तो स्थान पर जल्दी पहुँचेगी। गुरु का इतना लाभ रहता है।

सर्वोदय कार्यकर्त्ता श्री पलटन आजाद और शत्रुघ्न कुँवर के प्रश्न का उत्तर :--

प्रश्न :- अर्जुन ने सारे महाभारत में बहुत त्याग किया है. लेकिन उसको दुःख क्यों उठाना पड़ा ?

उत्तर :—महाभारत में अर्जुन के बारे में जो कुछ आता है

उसमें सारा त्याग अर्जुन को ही करना पड़ता है ऐसा नहीं। अर्जुन को दुःख उठाना पड़ा वैसे हरेक आदमी को सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्–सुख और दुःख दोनो सहन करना पड़ता है। उसका निमित्त बाहर हो सकता है। लेकिन मूल कारण हम ही हैं। अर्जुन और किसी को भी दुःख उठाना पड़ता है, उस दुःख की जिम्मेवारी उस-उस आदमी पर ही होती है।

प्रश्न :—आध्यात्म और विज्ञान का समन्वय विनोबा जी चाहते हैं। वह कैसे ?

उत्तर :—उस बारे में जब हम सोचते हैं तब हमको लगता है कि हमारे खुद में ही यह दोनो का समन्वय हुआ है। हमारा शरीर है, जगत में पानी है तो शरीर में पानी है, जगत में हवा है तो शरीर में हवा है, ये सब वैज्ञानिक चीजें हैं। लेकिन सिर्फ इससे ही हमारा शरीर बना नहीं। शरीर में मन है तो इन वैज्ञानिक चीजों का और मन का समन्वय होता है। वैसे बाहर भी हो। आंख हमारे खिलाफ जाय तो शरीर अपना काम कर नहीं सकता। मन ने चाहा कि आंख बन्द हो जाय तो आंख बन्द होती है और चाहा कि खुल जाय तो खुल जाती है। वैसे आत्मज्ञान के मार्ग दर्शन से विज्ञान को चलना चाहिये। नहीं तो दोनो के झगड़े होंगे। विज्ञान के हाथ में आत्मज्ञान ठीक नहीं। इन्द्रियों के मुताबिक मन चले यह ठीक नहीं। मां बच्चे को कंधे पर बैठा सकती है। लेकिन बच्चे के कंधे पर मां बैठे यह संभव नहीं। वैसे आत्मज्ञान के मार्ग दर्शन में विज्ञान को चलना चाहिये। थोड़े में इतन ही उत्तर है। इसपर तो और ज्यादा भी कह सकते हैं।

श्री गौरी शंकर मिश्र से हुइ महर्षि शिवाजी भावे की बातें, दिनांक--२०--६--६३ स्थान--दरभंगा अतिथि-निवास समय शाम को साढ़े चार बजे :--

प्रश्न—मन एकाग्र नहीं होता इधर-उधर घूमता रहता है तो क्या करना चाहिये ?

उत्तर—कोई साकार चीज रहती है, उसमें कुछ गुण रहता है तो मन पकड़ा जा सकता है। मधुर गाना हो तो भी मन पकड़ा जा सकता है। कहीं भी प्रार्थना की तो मन एकाग्र होता ही है ऐसी बात नहीं। प्रार्थना के कमरे में शान्ति हो स्वच्छता हो तो मन एकाग्र होता है। चर्च में यह गंभीरता रहती है। स्थान भी गंभीर हो तो मन ठीक रहता है। प्रार्थना में अलग-अलग भजन हो, अलग-अलग धुन हो इस तरह की कुछ विशेषता हर रोज हो तो मन लगने में सुविधा होती है। हर रोज सिर्फ चावल खायेंगे तो रुचि नहीं रहेगी। मन की रुची के अनुकूल आयोजन हो तो एकाग्रता होती है। अर्थात वह रुचि सुरुचि होनी चाहिये। सौ-दो सौ लोग बैठे हैं, प्रकाश भी सम्मिश्र है— बहुत ज्यादा नहीं—बहुत कम नहीं, शान्ति मन्त्र बोलते हैं तब असर होती है। हम खाते हैं तो भी क्या-क्या करते हैं। पीसते हैं, पकाते हैं, मसाले मिलाते हैं, ऐसे बहुत कुछ आयोजन करते हैं तब खाना तैयार होता है। वैसे प्रार्थना या ध्यान करना चाहें तो कुछ प्रबन्ध करना ही चाहिये।

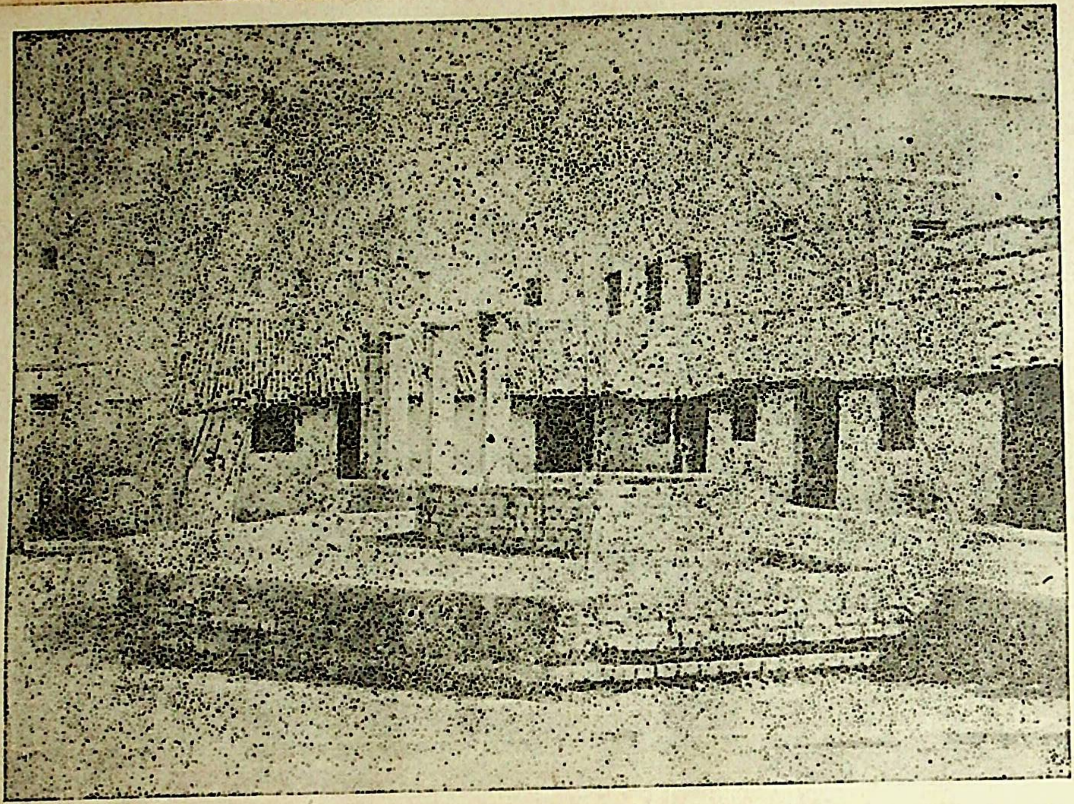
चित्त में अच्छे भाव कब आते हैं ? शरीर बीमार हो तो चित्त विक्षेप होता है। एकाध पोखरा हो, खिले हुए कमल हो, शान्ति हो तो ध्यान के लिये अच्छा होता है। हमारे घरों में एक कमरा रशोई के लिये रखा ही जाता है। वैसे ही एक कमरा ध्यान के लिये रख सकते हैं तो देखना चाहिये कि हम उसमें ऊब न जायें। उपासना में क्रिया ज्यादा हो ऐसी अपेक्षा नहीं। क्रिया कम हो लेकिन परिणाम ज्यादा होना चाहिये, शॉर्ट एन्ड स्वीट ऐसा होना चाहिये। अभी भी भोजन की चाह है, वैसी हालत में भोजन छोड़ देना चाहिये। जरा भी चाह नहीं रही तबतक खाते रहना यह ठीक बात नहीं। वैसे भी अभी भी प्रार्थना की चाह है ऐसा लगे तभी प्रार्थना छोड़ना चाहिए। मानसिक आयोजन भी हमें समझना चाहिये।

नहीं तो क्या होता है ? अमुक श्लोक प्रार्थना में रखे तो वह विधि हो जाता है। विधि का भी अपने में महत्व है, लेकिन हमसे ज्यादा मतलब नहीं। नाम जप की बातें करते हैं लेकिन नाम जप बड़ी कठिन बात है। नाम जप में शब्द छोटा रहता है। इसलिये ध्यान दूसरी ओर जाता है। लेकिन यदि आपको कोई तीस श्लोक कंठस्थ करने के लिये कहे तो उसमें आपका मन ज्यादा लगेगा। तो जो मन के अनुकूल हो वैसा मन को समझ कर करना चाहिये। भगवान के नाम जप से अन्दर कोई चेतना आती हो तो बात अलग है। हम हमारे नाम का जप करते नहीं लेकिन जितना जप करते हैं हमारे नाम का उतना दूसरे किसी का भी करते नहीं। रात को सब सोये रहते हैं और कोई हम को हमारे नाम से पुकारता है तो हम तुरत उठ जाते हैं।

मन इधर-उधर जाता है इसका मतलब उस क्रिया में चित्त लगा हुआ नहीं। उसको जबर्दस्ती से लगाने की कोशिश करें तो भी ठीक नहीं। छोड़ देने की तो बात ही नहीं। उस क्रिया में कैसे रस भरा जाय यह देखना चाहिये। जप में 'राम-राम' कहना एक जप है और 'श्री राम जयराम जय जय राम' कहना यह एक लम्बा जप है। इसमें ध्यान रखना पड़ता है। लेकिन उसकी भी आदत हो गई तो असर नहीं होती। जप दो प्रकार के होते हैं, एक उपांशु और दूसरा प्रकट। उपांशु जप धीरे-धीरे किया जाता लेकिन उसमे ज्यादा समय देना ठीक नहीं। जब रुचि बढ़े तब ज्यादा समय दे सकते हैं। बाद में रुचि से वह ही किया करे। इसका मतलब होता है कि अनासक्ति नहीं है और इसलिये ज्ञान की संभावना नहीं है।

योग सिद्धि के बारे में हमको विशेष कुछ महत्त्व नहीं लगता। हमारे एक मित्र थे उनको कुछ फ्रेक्चर हुआ था और करवट पलट नहीं सकते थे। तो उनको लगता था कि जो करवट पलटता है वही भाग्यवान है, उसको ही बड़ी सिद्धि मिली है। कोई सिद्धि मिलाना यह बड़ी बात नहीं। हमारे में जो कुछ है वह सिद्धियाँ ही है। हम उसको समझ नहीं रहे हैं। अन्न जाता है, अपने आप पचता है, हमारी बुद्धि की शक्ति है, यह सब सिद्धियाँ ही है। उसका ही योग्य उपयोग किया जाय। दूसरी सिद्धियों का विशेष महत्व नहीं।

———



स्वर्गीय श्री कमलेश्वरी चरण सिंहा का समाधि-स्थल जिस पर गांधी-मन्दिर-निर्माण का कार्य प्रारम्भ हो चुका है।

कमलेश्वरी सर्वोदय संस्थान, दरभंगा

न्यास समिति के सदस्यगण

१. श्री कृष्णराज मेहता—साधना केन्द्र, वाराणसी—अध्यक्ष ।
२. „ श्रीनारायण दास, संसद सदस्य—उपाध्यक्ष ।
३. „ डा० ललितेश्वरीचरण सिन्हा, एम० बी० बी० एस०, डी० टी० डी०—सचिव ।
४. „ भूपनारायण झा, एडवोकेट—सह-सचिव ।
५. „ रमावल्लभ जालान, एम० ए०—कोषाध्यक्ष ।
६. „ मातृका प्रसाद कोईराला, भूतपूर्व प्रधान मंत्री, नेपाल—सदस्य ।
७. „ सुरेन्द्रप्रसाद सिन्हा, अध्यक्ष नगरपालिका—सदस्य ।
८. „ प्रा० धर्मप्रिय लाल, एम० ए० (द्वितय)—सदस्य ।
९. „ संयोजक जिला सर्वोदय मंडल—सदस्य ।
१०. „ श्रीमती सावित्री सिन्हा, लोकसेविका—सदस्य ।
११. „ डा० उमेशचन्द्र श्रीवास्तव, बी० कॉम—सदस्य ।

सर्वोदय गीतायज्ञ के कार्यकारिणी समिति के सदस्यगण

१. श्रीमान् बाबू चन्द्रधारी सिंह—स्वागताध्यक्ष
२. श्री हृदयनारायण चौधरी—कार्यकारी अध्यक्ष
३. पं० गिरीन्द्र मोहन मिश्र—उपाध्यक्ष
४. श्री रामबहादुर प्रसाद गुप्ता—उपाध्यक्ष
५. श्री सुरेन्द्र प्रसाद सिंहा—उपाध्यक्ष
६. डा० श्री ललितेश्वरी चरण सिंहा—मंत्री
७. श्री सम्भू शरण—सहायक मंत्री
८. श्री श्रीनिवासमल बैरोलिया—कोषाध्यक्ष
९. श्री जे० सी० सेन—अंकेक्षक

सदस्यगण

१. पं० श्री गिरीश तिवारी, मंत्री विहार राज्य
२. श्रीमान् ओझा मुकुन्द झा, राज दरभंगा
३. पं० श्री लक्ष्मीकान्त झा, भूतपूर्व न्यायाधीश, विहार
४. श्री कुमार जीवेश्वर सिंह
५. श्री हेमेश्वर सिंह
६. श्री संयोजक, जिला सर्वोदय मंडल, दरभंगा
७. श्री कीरत महासेठ
८. श्री राजेन्द्र प्रसाद अग्रवाल
९. श्री यदुवीर सिंहा
१०. श्री गौरी शंकर दारुका
११. श्री धासी राम केडिया
१२. श्री पलट लाल
१३. श्री जगदीश चौधरी
१४. श्री बद्री प्रसाद अग्रवाल
१५. श्री छत्रधर कुँवर

अर्थ-संचय उप-समिति :—

१. श्री वेद प्रकाश पाठक
२. श्री कुन्दन लाल कपाही
३. श्री भूपनारायण झा
४. श्री महावीर राउत
५. डा० ताराशंकर प्रसाद

संस्थान के कर्मठ कार्यकर्त्ता :—

१. श्री नागेन्द्र लाल।
२. „ शत्रुघ्न कुँवर।

शुद्धि-पत्र

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१४, १६	सख्यं आत्म, कार्त्तन	सख्यमात्म, कीर्तन
२	३	उपदेश का भी	उपदेश भी
३	५	दिखने	देखने
६	८	भरा, पड़ा	भरी, पड़ी
७	१२, १९	हुये, वह	हुआ, ये
९	८, १७	भंजे, वह तो निकला	भेजा, वह निकला
२१	१६	सगुन	सगुण
२१	१७, १९	निर्मान मोहा	निर्माणमोहा
२२	१	त्रिषादयोग से शुरुआत हुई	विषादयोग से हुई
२३	१२	अधरे	अंधेरे
२५	१४,१६	आशक्ति, प्रतियोत्सामि	आसक्ति, प्रतियोत्स्यामि
२५	१७, २०	आशक्ति, साधू	आसक्ति, साधु
२६	६	प्रतियोत्सामि	प्रतियोत्स्यामि
२७	३	षडंध्री:	षडंघ्री
२७	१०, ११	जकर, काराग्रह	जकड़, कारागृह
२७	१६	विचिन्तयती, गजमुज्जहार	विचिन्तयति, गजउज्जहार
२८	७, २१	तप्ता, निर्माननिर्मोहा	तप्ता:, निर्माणमोहा
३२	१५	बहु	बहुत
३३	७	प्रयन्त्य अभिसं विशन्ति	प्रयान्त्यभि संविसन्ति
३४	१, २	मह, किया	यह, दिया
३४	४	अध्याय सांख्ययोग	अध्याय में सांख्ययोग
३४	९, १६	भगवास, कैसा चलता	भगवान, कैसे चलता

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४	१७	कैसा फिरता,	कैसे फिरता,
		कैसा बैठता	कैसे बैठता
३६	२	गांभीयँ	गांभीर्य
४०	४	श्रेयोऽहमाप्नुयाम	श्रेयोऽहमाप्नुयाम्
४०	१५, २०	समत्य, प्रद्धियेकमणं:	समत्व, प्रसिद्धयेदकर्मणः
४१	६	कमंण्यैव	कर्मण्येव
४७	१, १६	टिक्ती, मनु इक्ष्वाक-	टिकती, मनुः इक्ष्वाक-
४७	१६	विवस्वन्मनवे	विवस्वान्मनवे
५३	१७	मज्दूर	मजदूरों
५८	१	तरुन्निह, अगूं	तरुरिह, अगूं
५९	१, २	सीता, इसारे से,	सीता ने, इशारे से
६१	१०, १२	देवगिरी, विछाना	देवगिरि, बिछौना
६१	२०	का आवाज हुआ	की आवाज हुई
६२	१०, ११	निद, विताये	नींद, बिताया
६२	१७, १९	भगावन, वह	भगवान, उसने
६४	१५	तेऽव्ययाम	तेऽव्ययम्
६६	९, ११	अध्यात्म, परिप्रश्नेन	आध्यात्म, परिप्रश्नेन
६६	१२, १८	स्ताव, एकमप्यास्थित:	स्तत्व, एकमप्यस्थित:
६७	११, १३	वह, होता, है, प्रचचन	वे, होते, हैं, प्रवचन
७०	१४	साख्यानां	सांख्यानां
७१	४, १०	की, की	कि, के
	११	ह्यात्मनो	ह्यात्मनो

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७२	१०	उन	वे
७५	१५	भगवान पहले	भगवान ने पहले
७७	१८	चुटिलिटेरियनीज्म	टुटिलिटेरियनीज्म
८१	१	मिनिश्टर	मिनिस्टर
८१	२१	में··· ···· ··· या	उनको एक स्वप्न आया
८३	५	सेक्सपीयर	शेक्सपीयर
८३	८, ६	दी रनिंग, थींग	द रनिंग, थिंग
	१०,१२,१३	सेक्सपीयर, मि ता, दी	शेक्सपीयर, मिलता, द
८५	१६	षष्ठम	षष्ठ
८६	४	बातें	बात
८८	५, १०	गृहणी, ये मुद्रिके	गृहिणी, हे मुद्रिके !
६३	२, ३	चिन्तयन, मागे	चिन्तयन्, आगे
६५	८	क्रिये	दिये
६६	२१	छान्ति	छान्ति
६७	४, १२	भामन्यभाक्, कहा	मामन्यभाक्, कहीं
६८	३	रविन्द्रनाथ	रवीन्द्रनाथ
६६	२०	के	की
१००	१, ६, १६	हमारा, होना, उनकी	अपना, होना, उनको
१०२	१३	मरी	अपनी
१०४	१४	नवम्	नवम
१०५	३,	अतिपरियात्, संतत	अतिपरिचयात्, सततं
११०	१३, १४	मानव, हैं	मानस हैं.
११०	१५, २२	सुदामपुरी की, करना	सुदामपुरी, करनी
११३	६, ८	असीत्, गृहित्व	असित, गृहीत्वा
	१८	का इस, घवड़ाया	का, घबराया
११५	३, ४, १३	सुधि, दुग्घं, कहकर के	सुधीः, दुग्धं, कहकर

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११६	१३	यही	ही
१२२	७	क्षेत्र का	क्षेत्र में
१२३	६	ब्रह्मवय श्रम	ब्रह्मचर्याश्रम
१२६	१५, २१	पत्नी, वित्तेन्	पत्नियों, वित्तेन
१३३	१०	कैलिंग,	कैलिङ्ग
१३६	५, १२	निषद, भगवान्, कठिन	निषदै, भगवान की, कठिन है
१४०	२०	ह्वा	ह्वी
१४१	१, १२	दवी, चार्य का	देवी, चार्ज
१४५	१४, २०	लेंगे, गाता	लोगे, गीता
१४६	१०	सिद्धा	सिद्धो
१४७	२२	दमी	आदमी
१४८	१५	इभ, भेजे गये	इन, भेजा गया
१५३	२०	भगद्व्याप्ति	भगवद्व्याप्ति
१५५	४, ६, ७	अग्नेय, वाला, छप्पन्न	अग्नये, वाली, छप्पन
१५५	२१	चकहि	चकई
१५७	२	स्त्रविधं	स्त्रिविधं
१५८	८	गीरक्ष्य	गोरक्ष्य
१५९	१८, १६	भगवान्, शैतान	भगवान की, शैतान की
१६१	११, १६	चन्दनं, नूर्ख	चन्दनं नैव, मूर्ख
१६४	२ ८	अलकार, यन्दाचो	अलंकार, यद्वाचो
१६६	६	पार्था, धनुर्घरः	पार्थो, धनुर्धरः
१६६	१०, २०	होगा, व्रजः	होगी, व्रज
क	२, ८, १०	दी गई, कहता, छेटे	दिया गया, कहती, छोटे
	१२,१६,२०	स, अप, निगुंन	से, आप, निर्गुण
ख	३	निगुणो	निर्गुणो